रामाश्रम सत्संग (रजि०) प्रकाशन

संत-प्रसादी

(भाग-३)

परम संत डॉक्टर करतार सिंह साहब

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि०)

गाजियाबाद (उ०प्र०)

विषय सूची

क्रम सं.

1. नित्य की दिनचर्या की उपासना का रूप दें
2. समय थोड़ा है
3. ईश्वर के गुणों को अपने व्यावहारिक जीवन में उतारना ही सच्चा ईश्वर दर्शन है
4. वीर बनो
5. ईश्वर सत्य स्वरूप है निर्मल है हमें भी वैसा ही होना है
6. सेवा और प्रसन्नता को अपनाएं
7. प्रश्नोत्तर
8. तीन प्रकार के चरण
9. समर्पण कैसा हो
10. प्रभुके गुणों को अपनाना और भ्रम दूर करना
11. सच्चे जिज्ञासु बनो

दो शब्द

पूज्य भाई साहब परम संत करतार सिंह साहब, दिल्ली, के प्रवचनों के संकलन का यह तीसरा भाग प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत है । पूज्य भाई साहब का संक्षिप्त परिचय संत प्रसादी के प्रथम भाग में आ चुका है अतः उनका परिचय पुनः देने की यहां आवश्यकता नहीं है । आवश्यकता इस बात की है कि उनके प्रवचनों का ध्यानपूर्वक पढ़ें । उन पर विवेक बुद्धि से मनन करें और उनमें जो बातें अच्छी लगे उन्हें जीवन में उतारने का और वैसे ही बन जाने के भरसक प्रयास करें ।

संत तुलसीदास जी ने श्रीरामायण जैसी एक अमूल्य ग्रंथ की रचना की, जिससे असंख्य मनुष्यों का, भक्ति मार्ग में पथ प्रदर्शन हुआ । उस महान ग्रंथ के अंत में उन्होंने लिखा है:--

सत्-पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उन धरै ।
दारुण अविद्या पंच जनित विकार श्री रघुवर हरै ॥

अर्थात रामायण जी के सहस्रों चौपाइयों में से केवल सात पांच चौपाइयां जो पढ़ने वाले का मन हर ले यानि उसके मन को अतिप्रिय लगे , वह अपने हिये में धारण कर लें और अपने जीवन को वैसा ही बना लें तो भगवान उसके सारे अविद्या-जनित क्लेश हर लेते हैं ।

इसी प्रकार संतों की वाणी में से जो भी वचन ईश्वर प्रेमी पाठकों का मन हर ले, उन्हें मेरा अनुरोध हैं अपने ही में उतार लें और तदनुसार अपने जीवन को व्यवहारिक रूप दें तो भक्ति पथ में तीव्रता से अग्रसर होते रहेंगे । पूज्य भाई साहब के प्रवचनों को संत प्रसादी नामक पुस्तक का रूप देने का यही मुख्य उद्देश्य है

गाजियाबाद — दासानुदास

दि०-१५-०९-१९८७ ई० — महेश चंद्र

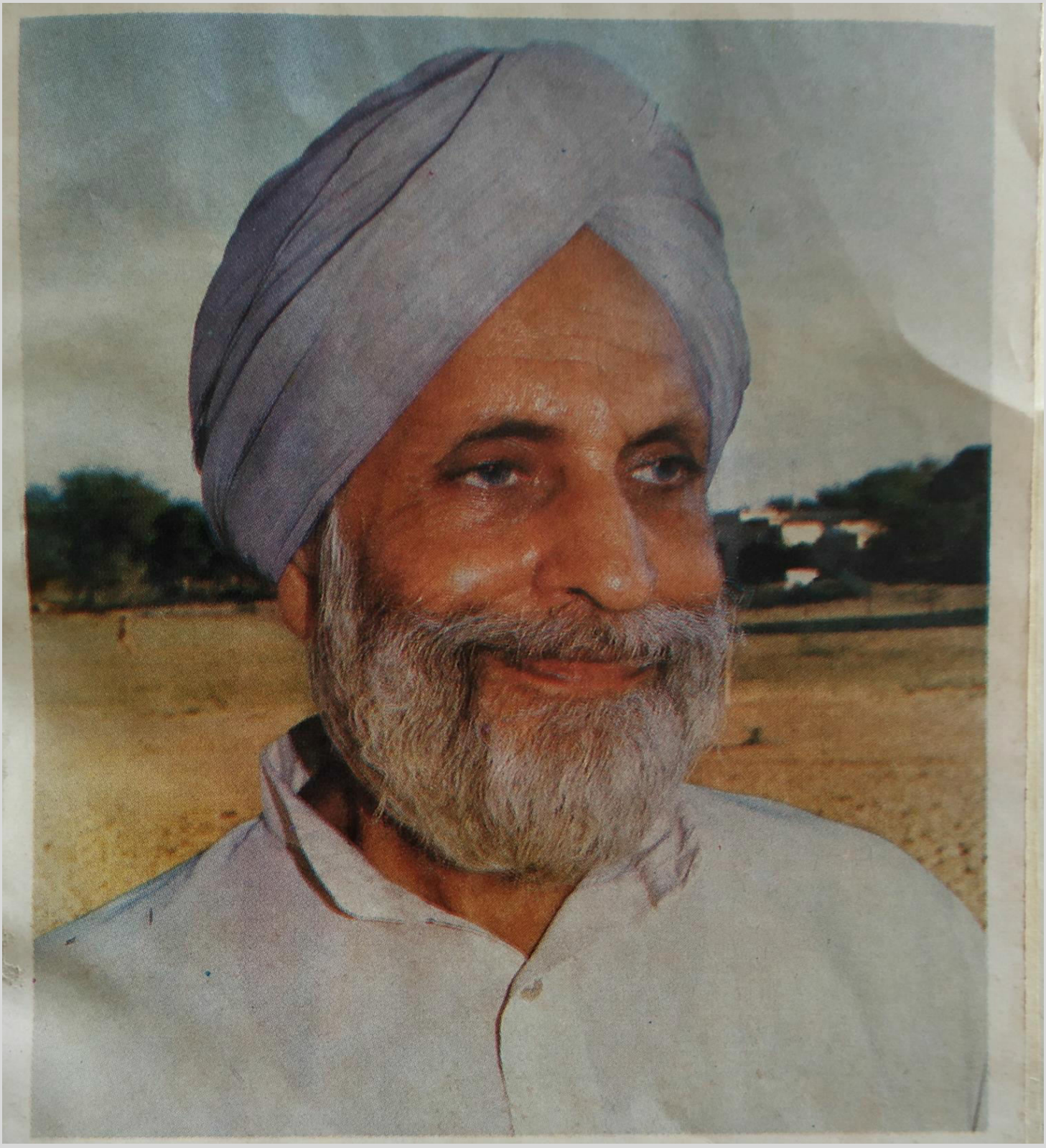

" अहंकार से प्रभु नहीं मिलते । चाहे कोई भी साधन करिए, दीनता को तो अपनाना हीं होगा "।

परम संत डॉ० करतार सिंह जी (भाई साहब)

(२२)

नित्य की दिनचर्या को उपासना का रूप दें

मथुरा, दि० ३-४-१९८२ प्रातः

कई लोग इतने व्यस्त रहते हैं, परमात्मा ने उनको ऐसे स्थानों पर रखा है कि जितना समय उनका मन चाहता है, उतना समय अभ्यास में नहीं दे पाते हैं । इससे वे दुखित होते हैं । बहनें विशेष कर लिख भेजती है कि हमें पूजा या साधना करने का समय नहीं मिलता है, मेरे बच्चे स्कूल जाते हैं, उसके बाद पतिदेव दफ्तर जाते हैं तत्पश्चात घर का कामकाज करना पड़ता है, खाना बनाना है, कपड़े धोने हैं, घर की सफाई करनी है, या स्वयं भी नौकरी पर जाना है इसी प्रकार सारा दिन निकल जाता है परन्तु संध्या के लिए, अभ्यास के लिए, उपयुक्त समय नहीं मिल पाता । और लोग भी यह दुनियादारी में फंसे हुए हैं । 'फंसना' नहीं कहना चाहिए, ईश्वर ने उनको रखा ही ऐसे स्थान पर । गुरुदेव ने बड़ा सरल उपाय ऐसे व्यक्तियों के लिए बताया है जिनको समय मिलता है । वे संध्या के लिए प्रातः और सायंकाल संयम और नियमानुसार नहीं बैठते हैं । वे प्रमादी हैं । वो इस श्रेणी में नहीं आते हैं जिनके पास समय है और वो नहीं बैठते वे क्षमा करेंगे, वे पाप कर रहे हैं, ईश्वर के प्रति न सही अपने प्रति तो करते ही हैं । जितना अधिकाधिक प्रभु का स्मरण किया जाएगा, प्रभु की याद की जाएगी उतना ही व्यक्ति को लाभ होगा । ईश्वर को क्या लाभ होना ? उस पर हम कोई कृपा नहीं करते है । तो निजी कृपा करते हैं जो अपने ऊपर करते हैं ।

भगवान कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं, पहले ज्ञान फिर योग भक्ति और उपदेश देते है कहते हैं कि ये रास्ते भी कठिन लगते हैं तो सरल रास्ता बतलाता हूँ यदि ध्यान से गीता का अध्ययन किया जाए तो मालूम होगा कि भगवान जो अपनी ओर ये से सरल रास्ता बता रहे हैं वो भी कठिन है वे कहते हैं कि यदि कोई अन्य साधना साधना नहीं कर सकता है तो जो कर्म करें उसे निष्काम भाव से करें परन्तु कर्म के फल के साथ आसक्त न हो यानी मोह न रखें । कर्म फल के साथ मोह न रखें, कोई आशा न रखें, ये भी तो नहीं होता हम से । गुरुदेव महात्मा श्री कृष्ण लाल जी ने उसी बात को दोहराया है कि आप सोचते हैं कि

भगवान के दर्शन घर बार छोड़कर जंगलों में जाकर होंगे, यह एक भूल है । एकांत कभी कभी सहायक होता है परन्तु हमेशा के लिए नहीं । भीतर में तो हमारे अवगुण हैं, संस्कार हैं । यदि हम घर में रहते तब, या जंगल में चले जाते तब, मन तो वही रहेगा वहां जाकर भी विचार उठेगा जो घर में उठाता है । तनिक सा फर्क पड़ सकता है इसमें कोई शक नहीं है । परन्तु जंगल में जाकर पूर्णत: मन निर्मल हो जाय यह संभव नहीं है उसके लिए काफी समय चाहिए, काफी साधना चाहिए । गुरुदेव कहते हैं कि मन का साधन करो घर में रहकर करो । यदि समय नहीं मिलता तो कोई बात नहीं जो काम करो ईश्वर की हुजूरी की स्मृति में ईश्वर के प्रति निष्काम भाव से, दूसरे की सेवा के रूप में करो तथा कर्म के फल के साथ आसक्ति न हो । आपने किसी को पांच सौ रुपये दिया । और मन में आशा रखते हैं कि वह व्यक्ति आपको सलाम करें, आपको हर समय धन्यवाद करें, आपकी सेवा निष्फल हो गई । ये सौदेबाजी है निष्काम कर्म नहीं है । जैसे पहले कहा था सूरज सब को धूप देता है किरणें रश्मियें बांटता है किन्तु वह किसी से कोई आशा नहीं रखता है । इसी प्रकार जो संत होते हैं वे दीन होते हैं, सब की सेवा करते हैं, ज्ञानी भी कई प्रकार के हैं- भक्ति मार्ग वाला भी ज्ञानी है गीता अच्छी तरह से पढ़िये तो मालूम होगा --वो ही लक्षण बता रहे हैं जो संन्यासी के हैं । जैसे सूर्य कर्म करता है वैसे कर्म करिये । संतो या ज्ञानियों की कर्म के साथ आसक्ति नहीं, बंधन नहीं, मन स्वतंत्र है । "ब्रह्मज्ञानी सदा निर्लेप"-- उन में दोषी वृत्तियां नहीं होती उनको किसी कर्म के फल की आसक्ति, पाप या दोष नहीं लगता यानी उनका चुकी बंधन नहीं है । इसलिए उनका कोई संस्कार नहीं बनता यही निर्दोषपत है ? मीरा जी कहती हैं कि मेरी चुंदरी ऐसी रंग दो की कोई दाग न रहे, कोई संस्कार न रहे । तो ब्रह्मज्ञानी या संत निष्काम भाव से कर्म करने वाला व्यक्ति हैं, उनका कोई दोष नहीं है, उसका कोई संस्कार नहीं बनता है । उदाहरण दिया है कि जैसे सूर्य भगवान सब को सुख पहुंचाते हैं निरासक्त भाव से । यदि उसी भाव से कोई व्यक्ति कर्म करता है, कर्म और कर्म के फल को ईश्वर के चरणों में समर्पण करता जाता है, रात को जब सोता है तो उसको किसी की याद ही नहीं, स्वप्न नहीं देखता है कि अमुक के साथ मैंने भलाई की अमुक के साथ यह बुराई की, अन्य व्यक्तियों ने मेरे साथ ऐसा किया, इस प्रकार उस पर कुछ असर ही नहीं है **'जैसे जल में कमल अलेप'** । कमल का फूल जल में रहता है चारों ओर जल ही जल रहता है परंतु जल की बूंद भी उस पर नहीं पड़ती है । यह काम बड़ा कठिन है । गुरु महाराज कहा करते थे कि इस माया रूपी काजल की कोठरी में आकर कोई व्यक्ति यह कहे कि उसे कालौंच न लगे असंभव है । गुरु महराज कहते हैं कि

करना यही रहकर होगा कहाँ चले जाएंगे ? माया क्या हमको छोड़ देगी ? घर बैठे, दुकान पर जाएं, दफ्तर में बैठे, स्कूल में जाए, जहां कहीं भी जाएँ,यह माया तो रहेगी हीं । मन को ही बनाना है ।

जिसके पास समय नहीं है वे गीता के कर्म-योंग को अपनाएँ, निष्काम भाव से कर्म करें । भगवान विष्णु ने नारद जी को अपने एक सेवक के पास भेज दिया । आदेश अनुसार नारद जी उनके पास गए । कुछ दिन रहे, देखा कि वह व्यक्ति सवेरे से शाम तक इतना व्यस्त रहता है कि उसको भगवान की याद के लिए कोई समय ही नहीं मिलता । सुबह जब उठता है उस वक्त 'नारायण' कहता है और जब सोता है तब 'नारायण' कहते है । नारद जी महान भक्त थे लेकिन उनमें भी थोड़ा सूक्ष्म अहंकार था । उन्हें बड़ा दुःख हुआ है कि भगवान ने मुझे कहाँ भेज दिया । यहां नारायण का कोई नाम ही नहीं लेता, अपनी मालिक की किसी को याद ही नहीं आती, ये भगवान ने मुझे कहाँ भेज दिया है । नाराजगी में भगवान के पास पहुंचे और बोले- "भगवान, आपने मेरे साथ ये क्या अन्याय किया ? उसे आप अपना सेवक बताते हैं और वो आपको याद तक नहीं करता । केवल एक बार प्रात: एक बार सोते समय 'नारायण' कहता है यह आपकी कैसी पूजा है ? भगवान मुस्कुराये । 'हाँ ठीक है इसका उत्तर बाद में देंगे' जरा आप एक काम करिये ।' एक तेल का कटोरा दे दिया, उसमें ऊपर तक तेल भरकर एक पुष्प उसके ऊपर रख दिया और कहा- 'महर्षि' इसे ले जाइए और विश्व की परिक्रमा करिये परन्तु ध्यान रहे कि यह तेल गिरे नहीं । "ठीक है, आज्ञा का पालन करूँगा ।" लिया कटोरा हाथ में । दस बीस पचास कदम गए होंगे, ध्यान उस तरफ है कि कहीं तेल न गिर जाए । यदि तेल गिर गया तो भगवान के आदेश का पालन नहीं होगा । अब उस Concentration (एकाग्रता) में मन की उस लगन मे, नारदजी से भगवान के नाम की विस्मृति हो गई । पूर्ण ध्यान तेल की तरफ थोड़ी ही देर रहा । तब नारद जी की समझ में आया । भगवान के चरणों में लोट गए । 'हे प्रभु ! यह काम मुझसे नहीं होगा' । भगवान ने समझाया कि आप सुमिरन करते हैं इसलिए कि आपका मन हर समय मेरे चरणों में लगा रहे और यदि आप तेल का कटोरा ले जाने में थोड़े समय में हीं उलझ गए, काम नहीं कर सके और वो व्यक्ति सवेरे से लेकर रात तक इतना व्यस्त रहता है कि मन किसी बुराई की तरफ जाता ही नहीं और वो जो भी कर्म करता है मेरे प्रति और मेरी उपासना के रूप में करता है । इस प्रकार से निष्काम भाव कर्म करना चाहिए और इस तरह से कर्म करना ही भक्ति का साधन है ।

भगवान कितने दयालु हैं कि जैसी जिसकी भावना है, जैसी जिसकी वृत्ति है उसी प्रकार आप उसको साधना बतलाते हैं । इसलिए मन में कभी निराश नहीं होना चाहिए कि समय का अभाव है । भोजन बना रहे हैं तो क्या, काम करते हुए उसी को याद में रहिये । खाना बना रहे हैं तो उसी के लिए । हम जब पतिदेव को भोजन परोसते हैं तो उन्हें ईश्वर का रूप समझ कर ऐसा करें । या और जितने काम करते हैं, उसी को याद में, उसी के लिए, उसी का समझकर, उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए करें और आशा नहीं रखें । बड़ा कठिन काम है कि आशा न रख कर हर काम हम करें । भीतर में अहंकार है । हमारे प्रत्येक विचार में, प्रत्येक कर्म में, आशा छिपी हुई है । यदि कोई व्यक्ति हमारी आशा या इच्छा के अनुसार काम नहीं करता है, तो हमारे अहंकार पर ठोकर लगती है । हम क्रोधित हो जाते हैं, व्याकुल हो जाते हैं ।

आप अपने कर्म फल के साथ आसक्त ना हो और मैं यह अपनी ओर से निवेदन करता हूं, उसकी भाषा इतनी रसमय है, महापुरुष थोड़े शब्दों में ही ज्ञान देते हैं और यह सुंदरता है, संस्कृत भाषा की । दूसरा जो भी कर्म करता है उसका जो फल होता है उसके साथ भी आसक्त नहीं होना चाहिए । यह बहुत कठिन है । कोई आपके साथ बुरा करता है, गाली दे देता है; आप उसके साथ नेकी करते हैं और बदले में वह बुराई देता है जो तो भीतर में हृदय, अग्नि की तरह जलता है । ये तो साधना नहीं है । भगवान कहते हैं कि अपने कर्म के फल के साथ आसक्ति न हो, दूसरे के कर्म का जो फल है उसके साथ भी आसक्ति न हो । कौन ऐसा कर पाएगा ? जो सब रूपों में भगवान के दर्शन करेगा । मित्र के रूप में भी भगवान के दर्शन करेगा और प्रतिकूल बन भावना वाले व्यक्ति, चाहे उसे शत्रु कहिये, चाहे जो भी कहिये उसमें भगवान के दर्शन करेगा । शत्रु और मित्र दोनों को एक भाव से देखता हुआ निष्काम भाव से दोनों को की एक जैसी सेवा करेगा । यदि ये भावना रहती है कि ये व्यक्ति तो ऐसा है इसने ऐसा किया तो ठीक नहीं है । बड़ा कठिन है ये मैं मानता हूँ मुझसे भी नहीं हो पाता । कोशिश करता हूँ परंतु तब भी इसका असर होने लगता है । इसके साथ साथ यह भी अभ्यास करें कि प्रभु जो कुछ करता है वो हमारे हित में है और जिस परिस्थिति में, जिस काम पर उन्होंने हमें रखा है हम उन्हीं परिस्थितियों में रहकर भगवान की उपासना, भक्ति द्वारा, ज्ञान द्वारा, सन्यास द्वारा, योग द्वारा, निष्काम भाव द्वारा समर्पण भाव से करें । ये कभी मुख से नहीं निकलना चाहिए कि साहब अभी समय नहीं है, अभी आयु ही क्या हुई है, कोई टाइम नहीं मिलता है । प्रतिक्षण प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ काम करता ही रहता है, कुछ विचार उठता ही

रहता है । वो कर्म, वो विचार, वो वाणी, प्रभु के प्रति उपासना का रूप लिए हुए हो । कुछ करने की जरूरत नहीं है, आँखें बंद करने की जरूरत भी नहीं है केवल आपका प्रत्येक कर्म उपासना का रूप लिए हो । इसलिए दार्शनिकों ने कहा है–Work is worship कर्म हीं उपासना है । कर्म काबू उपासना बनता है ? जब हम भगवान के अधीन आदेशानुसार निष्काम भाव से कर्म करते हैं और फल की कोई आशा नहीं रखते हैं । प्रत्येक व्यक्ति हर कर्म में, हर विचार में, कोई न कोई आशा रखता है । यह मनुष्य की भावना होती है कि यह वह यह चाहता है कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति उसकी आशा के अनुसार व्यवहार करें और एक भावना उसके अंदर यह भी रहती है कि विश्व का सारा धन उसी का हो जाए, सारे सुख उसी को मिले और किसी को न मिले । प्राय यह सब की भावना होती है । जिस समय हमें यह समझ आ जाएगी कि प्रभु कहाँ नहीं है, कण कण में वे ही है, सब प्राणियों में वे ही हैं, और हम जो व्यवहार करते हैं ईश्वर के साथ करते हैं और ईश्वर के उस रूप को हमें प्रसन्न करना है । उस रूप में चाहे कितना ही हमें विरोध मिले, हमारा कर्तव्य है कि हम उसे ईश्वर समझकर उसके साथ व्यवहार करें ।

ये डाकू लोग जो होते हैं कई किस्म के होते हैं । एक सरल यात्री ने व्यक्ति ने एक साधु वेश में डाकू को देखा । डाकू ने सोचा कि इससे धन लूटा जा सकता है । उससे मित्रता बनाई । यात्री ने कहा कि मुझे भगवान के दर्शन चाहिए । उसने कहा कि यह तो बडा सरल है । तुम जानते हो कि भगवान के लिए सर्वस्व त्याग करना पड़ता है, क्या तुम क्या कर सकते हो ? उसने कहा कि मैं तैयार हूँ । डाकू बोला कि अपना सारा धन ले ले, गठरी बाँध ले और चल मेरे साथ, में भगवान के दर्शन करा दूंगा । ये आजकल जो आप देखते हैं कि डकैतियां पड़ती हैं या चोरियां होती है, पुराने जमाने में भी होती थी, परंतु उसका ढंग अलग होता था । उसने एक कुएं के पास ले जा कर कहा कि धन की गठरी को कुएं में डालो और नीचे देखो । इस तरह करने से तुम भगवान के चरणों में पहुँच जाओगे और तुम्हें दर्शन हो जायेंगे । उस व्यक्ति (जिज्ञासु) में सरलता थी । उसने कहा 'ठीक है' । उसने धन की गठरी कुएं में डाल दी और जैसे ही उस में झाँक कर देखा, वैसे ही डाकू ने उसे कुँए में ढकेल दिया । भगवान उस व्यक्ति की सरलता पर बड़े प्रसन्न हुए ।उन्होंने उस कुँए के बीच में से ही उसे अपने हाँथों में उठा लिया और बाहर निकाला । धन की गठरी उसे दे दी । उसने कहा कि धन नहीं चाहिए, मुझे तो उस महापुरुष के चरण पकडने हैं जिसने मुझे भगवान के दर्शन कराये, आप मुझे छोड़ दीजिये भगवान बहुतेरा उसे समझाते रहे परन्तु उस की समझ में नहीं आया ।

यदि कर्म में सत्यता है तो भगवान डाकू में या डाकू के द्वारा भी प्रकट होते हैं । भगवान का कुछ पता नहीं लगता कि किस स्वरूप में वो आते हैं । नामदेव जी जा रहे हैं, एक पठान आया है । पठानों जैसे पगड़ी और लूंगी बांधी हुई है, सर पर एक बड़ी भारी गठरी है जिसमें बड़ा बोझ है । नाम देव जी से कहा है–"अरे भक्त ! उठा इसको और मेरे घर ले चल" । नामदेव जी बड़े सीधे थे, सबमें ही भगवान के दर्शन करते थे । उन्होंने कहा कि ठीक है भगवान । गठरी सर पर रखी और उसके घर के पहुँचा दी । उस पठान रुपी भगवान ने कहा- चल, भाग जा । तो आपने अपनी वाणी उच्चारण की कि आप कैसे सुंदर बने हैं, कैसी पठानों जैसी पगड़ी बांध ली है । आपने मेरे सिर पर गठरी रखी है आप तो मेरे रोम रोम में प्रवेश कर गये हैं । यह कह कर कि "मैं कहाँ जाऊं" उस पठान के चरणों में गिर गए हैं ।

जिनके समय मिलता है उनको तो नियमानुसार सवेरे शाम संध्या पर बैठना चाहिए और सारे दिन काम करते हुए भगवान की स्मृति रखनी चाहिए । और जिसको समय नहीं मिलता है उन्हें निराश नहीं होना चाहिए, चाहे वह पुरुष हो चाहे बहने हों । वे इसी प्रकार गुरु महाराज के आदेशानुसार गुरु की याद में रहे-- मन ही मन उनका स्मरण रहे और ख्याल करें कि हम तो प्रभु की हजूरी में हैं उनका भान करें । यदि दो चार दस दिन इसका अभ्यास करें तो आप अनुभव करेंगे कि उनकी कृपा के शरीर को छू रही है आपके हृदय को शीतलता प्रदान कर रही है । जिनके साथ व्यवहार हो, मित्रता का हो, सब को प्रभु दृष्टि से देखें, सब में ही ईश्वर व्यापक है और सवेरे से शाम तक हम जो कर्म करें उसे प्रभु के चरणों में समर्पित करते चले । 'प्रभु, ये भी आप ही ले लीजिये, मैं तो आपकी सेवा में रहूँ । कोई आशा न रखें कोई आसक्ति न रखें । इससे भी मोक्ष मिल सकती है । मोक्ष का क्या मतलब है कि जहां जहां फंसा हुआ है और वहां से उसे मुक्ति मिल जाए और हमारे अंत:करण में जो कुछ पिछले संस्कार है जिसके कारण हमारी वृत्तियाँ बनती हैं, स्वभाव बना है जिसके कारण हम अपना व्यवहार करते हैं उसमें क्रांति आये, परिवर्तन आये । बार बार ईश्वर की याद आएगी तो इश्वर का रूप या गुरु रूप बनते चले जाएंगे–**"तू तू करता तू भया मुझमें रही न हूँ"** यानी उसको बार बार याद करने से वही रूप बनता चला जायेगा और आगे जाकर उसी का रूप बन जाएगा । कुछ अन्य साधन करने की जरूरत ही नहीं है यह कहना कि समय का अभाव है यह हमारी कमजोरी है या अज्ञान है -बेसमझी है बल्कि हमारी भूल है । गुरु महाराज ने इसके लिए चेतावनी दी है । खाना खाते हैं तो हम उनको भूल जाते हैं बातें करते हुए हम भूल जाते हैं, शोषण करते हुए हम भूल जाते हैं, लड़ाई-झगड़ा करते हुए भूल जाते हैं । और भी कई

परिस्थितियां आती हैं जिसमें हम भूल जाते हैं । किसी प्रकार साधना करिये-- तेल की धार की तरह निरंतर स्मृति का प्रवाह चलते ही रहना चाहिए । इसी निष्काम भाव से कर्म करने से हमारा आचरण भी शुद्ध हो जाएगा, हमारा धर्म भी बन जाएगा, यम और नियम भी सध जाएंगे, कुछ नहीं करना पड़ेगा । ईश्वर की अनुभूति, ईश्वर के दर्शन भी हो जायेंगे, और जो हमारा लक्ष्य है निर्मलता, स्वतंत्रता, जीवन मुक्त होना, संस्कारों से मुक्ति, कोई इच्छा नहीं है भीतर में इसी निष्काम भाव से कर्म करते हुए यह सब कुछ प्राप्त हो जाएगा ।

जिनको समय मिलता है वह साधना भी करें और सारे दिन और सारे दिन ईश्वर की स्मृति में भी रहे, जिनको नहीं मिलता वे कर्म को ही उपासना का रूप दे । कुछ और करने की जरूरत नहीं है । यह महान यज्ञ है कर्म को तपस्या का रूप देना, उपासना का रूप देना । आप हजार यज्ञ भी कर लीजिये लेकिन यदि उनके साथ आपका मन नहीं है, तो सब निष्फल है । परंतु कर्म में आप एक व्यक्ति को सुख और शांति पहुंचाते हैं वह आपसे प्रसन्नचित लेकर जाता है, आपको आशीर्वाद देता चला जाता है । वह आशीर्वाद उस व्यक्ति का नहीं, वो तो परमात्मा की ओर से है, वो परमात्मा की प्रसादी है उससे आपको कितना लाभ होता है । इसलिए हम माता पिता के आशीर्वाद की भिक्षा मांगते हैं, हम अध्यात्म की शिक्षा गुरु की प्रसन्नता चाहते हैं । हम आध्यात्मिक गुरु के आशीर्वाद के भिखारी हैं, उनके द्वारा हमें परमात्मा को प्रसन्नता प्राप्त होती है । वह प्रसन्नता चाहे किसी व्यक्ति के द्वारा आये, चाहे गुरु के द्वारा आए, चाहे भीतर में मन प्रसन्न हो जाए और वह आपके शरीर को रोमांचित कर दे, किसी प्रकार मिले हमें उससे अधिक लाभ मिलता है । कोई भी पूजा हम करें सब अच्छी है सब का लाभ होता है, परंतु असली पूजा वही है जो अभी बतलाई है । यदि आपको काम करते हुए प्रसन्नता मिलती है, आपको ही नहीं जिनके साथ आपका व्यवहार हैं, उनको भी ऐसे शुभ गुण मिलते हैं । यानी तृप्ति मिलती है, आनंद मिलता है, शांति मिलती है, सुख मिलता है, इससे अच्छा और क्या हो सकता है । ये महान तप है । व्यवहार में सहनशीलता होनी चाहिए । पूज्य लाला जी महाराज (परम संत महात्मा राम चन्द्र जी महाराज) ने कहा है कि लोग बाग अग्नि के पास बैठकर तप करते हैं परंतु हमारे यहां का तप क्या है ? दूसरे लोग हमें बुरा-भला कहें और हम उसे सहन करें । अग्नि तपने से तो सहनशीलता जो तप है वो कहीं अधिक उत्तम है । इस व्यवहार में अनेको कठिनाईयां आएंगी । उन कठिनाइयों की चिंता न करते हुए अपने इस सहनशीलता के भाव को, इस भाव को कि जो कुछ हम करते हैं ईश्वर के प्रति करते हैं, हम उस भाव को नहीं छोड़े । कुछ समय के बाद यही भाव हमें

ईश्वर के चरणों में मिला देगा, जैसे अभी भजन पढ़ा गया, पहले हम भगवान कृष्ण को याद करते है तत्पश्चात भगवान हमारी याद करते हैं । ये कबीर साहब के शब्द हैं कि पहले मैं राम राम कहता था और भगवान कबीर कबीर कहते हैं । कोई अंतर रहता ही नहीं । जिस व्यक्ति के साथ आपका व्यवहार शुद्ध होगा और वो तो आपको ही भगवान का रूप समझेगा । वास्तव में आपकी आत्मा और परमात्मा तो एक है । जिसके साथ आपका अच्छा व्यवहार हो वहीं आपको भगवान स्वरूप कहेगा । परमात्मा उसी रूप में आपको भगवान कहेगा, राम-राम कहेगा, यही कबीर साहब की वाणी का मतलब है । ये एक प्रकार का अभ्यास है जो कि प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए (चाहे वह किसी प्रकार के साथ साधना करता हो) कि प्रत्येक क्षण प्रभु की याद में रहे; उनकी हुजूरी का भान करें । हमारे यहां फैज़ (ईश्वर कृपा) के लेने का जो तरीका है वह यही है, इस हजूरी को परिपक्व करने के लिए है । आगे चलकर बाहर भी है और भीतर भी है । इस अभ्यास को करें और जिस प्रकार की भी साधना आप करते हैं, इस भाव को बढ़ाते रहे । कोई भी साधना करें, निर्मल और प्रेम-भाव से करें । भगवान रसों का भूखा नहीं है, वो भाव का भूखा है । नामदेव जी भगवान को दूध पिलाते हैं, भगवान दूध नहीं पीते हैं तो कहते हैं, अच्छा पिता जी दूध पिलाते हैं तो उनसे तो आप पी लेते हैं और मुझसे आप नहीं पीते । तो फिर मैं क्या करू ? डंडा लाऊं ? नामदेव जी की इस ताड़ना में भाव है । भगवान ने बुरा नहीं माना । भगवान प्रकट हुए और बड़े प्रेम से दूध को स्वीकार किया । उस बालक की सरलता देखिए । ये भाव है । वास्तव में किसी प्रकार से हम प्रभु की उपासना करें, भगवान कृष्ण गीता में हमें विश्वास दिलाते हैं कि सब उपासना मेरे प्रति आती है, सब जो फल मिलता है, चाहे किसी प्रकार से भी मुझे भजो । इसकी पुष्टि इस युग में स्वामी रामकृष्णने की है उन्होंने सोलह तरीकों से भगवान के दर्शन किए और अपना निर्णय दिया है कि प्रभु के मिलने के सभी रास्ते सही है । एक रास्ता ठीक है तो सभी ठीक है । यदि किसी भी पद्धति से कोई ईश्वर की उपासना करता है तो उसकी आलोचना नहीं करनी चाहिए । उसके भाव को देखना चाहिए । विवेकानंद जी कितने ज्ञानी थे । अंत में उनके भीतर भी कोमलता जागृत हुई । एक व्यक्ति को भगवान की पत्थर की मूर्ति के आगे उपासना करते हुए देखा । उसके आंखों से अश्रुओं की धारा बह रही है और उस जलधारा से भगवान को स्नान करा रहा है । देखकर चकित रह गए हैं । सोचने लगी कि मैं अपने आपको ज्ञानी समझता था, मेरे गुरु बड़े महान थे उन्होंने ईश्वर का अनुभव कराया परन्तु वो इस भक्त के आगे तो कुछ भी नहीं है । उन्होंने लिखा है कि ऐसे भक्त के चक्षुओं से जो एक पवित्र बूंद गिरती है तो ऐसे भक्त की साधना ज्ञानी की साधना

से कहीं अधिक महत्व की है । उन्होंने ये नहीं कहा कि ज्ञान की साधना कोई गलत है । ऐसे भक्त के भीतर जो कोमलता है, सरलता है, वो साधारण ज्ञानी के भीतर नहीं है । रूखापन होता है ।

भगवान को जिस तरह से भी याद कीजिये यह तो आपकी स्वतंत्रता है, यदि ज्ञान मार्ग को पकड़ा है तो छोड़िए नहीं । यदि भक्ति ली है तो भगवान के सब रूपों में भक्ति ही भक्ति है । समर्पण की साधना की है तो सब कुछ उसके चरणों में अर्पित कर दीजिये । अपना कुछ नहीं । "मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तुज्झ, तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मुज्झ" । विनोबा जी ने गीता प्रवचन में लिखा है कि एक स्त्री है । पुराने जमाने में स्त्रियां पूजा-पाठ करने से पहले घर की सफाई करती थी, कूड़ा करकट घर के बाहर फेंक कर तब स्नान करती थीं । कूड़ा फेंकते समय कहती थी–'भगवान ! आपके चरणों में अर्पण' । साथ में मकान में एक मंदिर था उसमें भगवान विट्ठल की मूर्ति थी । वह कूड़ा उस मूर्ति के श्री मुख में चिपक जाता था । पुजारी को बड़ा दुःख होता था । एक दिन वह बुढिया बीमार हुई । उसने वह बीमारी भगवान के चरणों में अर्पित कर दी । मूर्ति की अवस्था अस्त व्यस्त हो गई । पुजारी बड़े असमंजस में पड गया कि क्या बात है । उस बुढिया को लेने विमान आया तो उसके लिए उसने कहा 'नारायण अर्पण' । वह विमान मंदिर की दीवार से टकराकर चकनाचूर हो गया । भगवान बुढिया के सामने प्रकट हुए, उसे अपनी गोद में ले लिया । यह समर्पण है । और भी कई उदाहरण हैं । एक बुढ़िया जो कुछ खाती थी सब भगवान को अर्पण करती थी । एक दिन एक व्यक्ति ने उसे एक थप्पड़ लगा दिया । उसे भी उसने भगवान का अर्पण कर दिया । वह थप्पड़ भगवान के मुंह पर लगा । उन्होंने तुरंत नारद जी को कहा कि 'तुरंत' जाओ । सब कुछ अर्पण किया वो तो ठीक है परंतु थप्पड़ क्यों अर्पण किया ? समर्पण में बुराई-भलाई कुछ नहीं है । सब उसी के अर्पण है । बुराई भलाई है क्या ? अगर हमने अपने आप को उसके समर्पण कर ही दिया तो बुराई क्या रही ? भले हैं तो भी तुम्हारे बुरे हैं तब भी प्रभु तुम्हारे हैं । यह कहने मात्र के लिए हो, वह वास्विकता बन जाए । प्रभु तो आपके पास ही है, कहीं दूर नहीं है । समीप से समीप है । ऐसे ही भाव हमें प्रभु के चरणों में लोट पोट कर देता है तो भगवान उस थप्पड को स्वयं सहन कर लेते हैं और नारद जी को भेज कर उस बुढिया को अपने धाम में बुला लेते हैं ।

'भाव' की कमी है । जिस पवित्र धरती पर आज आप विराजे हैं यह तो पवित्र स्थल (कृष्ण जन्म-भूमि) भाव ही का स्थल है, यहां चारों और प्रेम की वृष्टि होती है । इस पवित्र भूमि पर गोपियों ने अपनी प्रेम-धारा उस बाल गोपाल को अर्पित की है । किस प्रकार भगवान ने उनके साथ क्रीडा की । उसी प्रेम धारा में किस प्रकार भगवान ने उनके दूध दही के मटके कंकर मारकर तोड़े और उन मटकों को का दूध दही सब गोपियों पर गिरता था जिससे उनके मन और शरीर की शुद्धि हो जाती थी । वे भगवान से कहती थी और कंकर फेको । उसमें आनंद आता था । ये भी एक साधना है । भगवान ने उनके लिए आत्म प्रसादी देकर चित्त की मलीनता को धो दिया । इस विधि से भगवान ने अनेकों का उद्धार किया । यहां तो चारों और प्रेम ही प्रेम है । गोपिया ने संसार के सामने एक उदाहरण पेश किया है प्रेम कैसे किया जाता है । भगवान को कैसे बुलाया जाता है । भगवान स्वयं गोपियों के लिए कैसे व्याकुल होते हैं । भगवान विष्णु से नारद जी पूछते हैं कि आपके गुरु कौन है ? चुप रहे । नारद जी भगवान के घनिष्ठतम भक्त थे । एक बार नहीं उत्तर मिला तो उन्होंने दूसरी बार पूछा, फिर तीसरी बार पूछा । भगवान के श्री मुख से निकालने की कोशिश की 'गो' । पूरा गोपी नहीं उच्चारण कर सके और मूर्छित हो गए । उनके कहने का भाव था कि इस पवित्र धरती पर गोपियां ही मेरी गुरु है । यहां के वासियों को तो प्रेरणा लेनी चाहिए । यहां से प्रेम की रिश्में सारे भारत में जाती है । सारा देश याद करता है भगवान की इस पवित्र जन्म-भूमि को । दूर दूर से लोग यहां आते हैं और यहां से पवित्र रज ले जा कर अपने पास रखते हैं और प्रातःकाल अपने मस्तक पर लगाते हैं परन्तु यहां के अधिकांश लोग यहां की महानता और यहां के महत्व को समझते नहीं हैं । कई पवित्र आत्माएं ऐसी हैं जो आजकल पंजाब और बंगाल से आती हैं, खास कर के अमृतसर के काफी लोग है यहाँ । वो अपना अंतिम जीवन, जैसे लोग बुढ़ापे में बनारस में जाकर रहते हैं कि वहाँ मृत्यु हो जाए, मोक्ष मिल जाये , ऐसे ही लोग यहां आते हैं कि उनके प्राण यही निकले । इसी प्रकार वैष्णवजन यहीं आकर रहते हैं और उनकी इच्छा रहती है कि उनके प्राण भगवान की याद में निकले तो यहाँ रहते हुए भी । चाहे हम और कुछ न करें केवल भगवान की लीलाओं को याद करके उनका स्मरण करें, यही साधना हमें अपने जीवन के में सफलता के मार्ग पर लगा देगी ।

(२३)

समय थोड़ा है ।

कोटा, दि० ७-५-८२ (प्रात:)

मनुष्य शरीर ही एक ऐसा उपकरण है कि इसके बिना आत्मा या परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता । इस शरीर को पाने के लिए देवतागण भी ईश्वर से प्रार्थना करते रहते हैं कि उन्हें मनुष्य चोला मिले ताकि वे मोक्ष का साधन कर सके । केवल इस मनुष्य शरीर रूपी उपकरण से आध्यात्मिकता का साधन हो सकता है । यह मनुष्य शरीर जो हमें ईश्वर कृपा से प्राप्त हुआ है उसका सदुपयोग करना चाहिए । परन्तु हमने इसको आलसी बना दिया है, संसार में मोहग्रस्त हो रहा है, अपने मन और इंद्रियों के सुख में फंसा हुआ है । कुछ बुद्धि से विचार करने लगता है तो मन के विचारों में जल्दी फँस जाता है । आखिर परमात्मा को यह सूझा क्या कि उसने यह सृष्टि बनाई । ऐसी बातों में वह अपना समय व्यर्थ खोता है कबीर साहब कहते हैं कि साधना बुद्धि का विकास अध्यात्मिक पढ़ाई, ये सब तो बचपन से ही शुरू कर देनी चाहिए । यदि किसी कारण बचपन निकल गया युवा अवस्था आ गई है तो होश में आना चाहिए । युवा अवस्था भी निकल गई जरा अवस्था में यानी बुढापा आ गया है, मृत्यु सामने दीखती है तब भी हमको होश में आना चाहिए । तब भी नहीं किया यमराज के दूत आ गये हैं, कबीर साहब कहते हैं कि अब तो कुछ कर लो । तो उस वक्त मनुष्य में से कुछ होता नहीं क्योंकि उसका स्वभाव ऐसा बन चुका होता है कि वह शरीर से भले ही दुखी हो , आर्थिक कठिनाइयां हो संसार जूते लगाता हो फिर भी वह संसार में इतना मोह ग्रस्त होता है कि मरना नहीं चाहता ।

कोई व्यक्ति मरना नहीं चाहते । ऐसी कई कहानियां हैं । परम संत शिवव्रत लाल जी ने एक कहानी लिखी है कि एक मुसाफिर जंगल से गुजर रहा है, पीछे से शेर आया है पकड़ने के लिए । उस मुसाफिर ने पास में ही कुआं देखा, उसमें छलांग लगाई । किसी तरह कुँए में उगे हुए एक वृक्ष की शाखा उसके हाथ लग गई उसे पकड़ कर कुएं में लटक गया । क्या देखता है कि नीचे एक मगर (Crocodile) मुंह खोले उनके गिरने का इंतजार में है । ऊपर दो चूहे हैं एक सफेद और एक काला वो उस डाल को काट रहे हैं, परंतु वृक्ष में लगे

मधुमक्खी के छत्ते में से शहद की बूंद गिर रही है और उसके मुंह में जा रही है । वह व्यक्ति कितनी मुसीबत में घिरा है कि मौत हर तरफ दिखाई दे रही है । समय व्यतित होता जा रहा है दिन और रात रूपी चूहे आयु को निरंतर काट रहे हैं, किन्तु इन बातों का उसको जरा भी ख्याल नहीं आ रहा है और वह मूर्ख व्यक्ति उन मधु के बूंदों का रसास्वाद में लगा है । देख रहा है कि ऊपर से चूहे डाल काट रहे हैं, तबी भी नीचे गिरेगा । शिव व्रत लाल जी ने यह बताया है कि ये चूहे क्या है ? नीचे मगर और जल क्या है पेड क्या है आदि । ये जो चूहे हैं यह आयु है समय है, चूहों का काम है काटना, वे हर वस्तु को काटते रहते हैं । हमारी आयु कट रही है । किसी वक्त भी उस मगर के मुंह में, जो मौत का रूप है, गिरना है । यह जंगल जो है ये संसार है, जहां चारों और उत्तेजनाएं हैं, कोई सुख नहीं है । फिर भी मनुष्य को होश नहीं है, वह शहद रूपी सांसारिक क्षणिक सुखों के आनंद में लिप्त है ।

इसी प्रकार नारद जी की एक कहानी है । विष्णु भगवान ने नारद जी से कहा है कि वैकुण्ठ लोक खाली पड़ा है आप मृत्यु लोक यानी संसार में जाइए और वहां से अच्छे अच्छे प्राणियों को लाइए, उनको यहां सुख मिलेगा । नारद जी गए हैं । गर्मी खूब पड़ रही है । एक व्यक्ति सिर पर एक भारी गठरी उठाए हुए हैं, ठीक से ले जा नहीं पा रहा है और कह रहा है कि हे प्रभु, तू बड़ा अन्यायी है, तेरे घर में न्याय नहीं है । इतना दुखी हूँ मैं । तू मुझे मौत ही दे दे । मरने के बाद तो यह दुःख नहीं होगा, न घर के व्यक्ति होंगे जिनके कारण यह सब सहन करना पड़ रहा है, इत्यादि । नारद जी ने सोचा कि यह मनुष्य संसार से ऊब गया है, इसको बैकुंठ में ले जाते हैं । उस व्यक्ति से कहा “भाई, तुम घबराओ नहीं, मैं तुम्हें बैकुंठ लिए चलता हूँ । वहां तुम्हें बडा सुख मिलेगा ।

इस शरीर को बदलने में और दूसरा शरीर धारण करने में (जिसे लोग मृत्यु कहते हैं) उससे वह सब लोग डरते हैं । चाहे यह जानते हैं कि मृत्यु कुछ नहीं है, यह जीव एक शरीर छोड़कर दूसरा बदलेगा परन्तु फिर भी व्यक्ति उससे डरता है । कैसी यातनाएं मिलेंगी , कैसे मृत्यु होगी । सुख की कोई नहीं सोचता दुःख की हीं सोचता है, मन में पाप भरे होते हैं । इंसान अगर बैठ कर सोचने लगे कि बचपन से लेकर अब तक मैंने कितनी गलतियाँ की तो वह पागल सा हो जाता है, मौत के वक्त वो सामने आ जाती है । इसलिए प्रत्येक व्यक्ति मौत से बहुत घबराता है ।

तो यह व्यक्ति नारद जी से कहता है कि " भगवान आपकी बड़ी कृपा है जो आप मुझे बैकुंठ ले जाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं परन्तु मेरे ऊपर बच्चों का कुछ दायित्व है वे अभी छोटे छोटे हैं । वे जब बड़े हो जाए तब आप आइयेगा मैं आपके साथ प्रसन्नता पूर्वक चलूंगा । जरूर चलूंगा । " नारद जी कुछ काल बाद पुनः आये हैं तब तक बच्चे जवान हो चुके थे और वह व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होकर बैल बन गया था । नारद जी ने इस बैल को संबोधित करके कहा - "तू अब भी चल ।" तो उसने उत्तर दिया–"महर्षि, ये मेरे बच्चे बड़े प्रमादी हैं, यदि मैं खेत नहीं जोतूंगा तो ये खेती नहीं होगी और ये भूखे मर जाएंगे । कुछ दिनों आप और प्रतीक्षा कर करें, तब तक लड़कों को कुछ समझ में आ जाएगी ।" नारद जी चले गए फिर जब तीसरी बार आए तब वह बैल मर चुका कुत्ता बन बैठा था नारद जी ने कहा है कि तू कैसी योनि में फंसा है, गंदगी खाता है, दुर्दशा में पड़ा है । तो वह कहता है कि बच्चे अपनी संपत्ति को संभाल नहीं सकते इसलिए पड़ा हूँ--और रखवाली करता रहता हूँ । कुछ और समय दीजिये । नारद जी कुछ काल बाद आये तो वह कुत्ता भी मर चुका है ज्ञान दृष्टि से देखा तो सड़ी हुई गंदी नाली मेंएक कीटाणु बन कर पड़ा हुआ है । यह वही व्यक्ति था इस नई योनी में । बड़ी सोचनीय अवस्था है । नारद जी कहते हैं "अरे, तू कहाँ पड़ा है ? तू चल मेरे साथ । हद हो गई है तेरी दुर्दशा की ।" तो वह प्राणी क्या कहता है भगवान आप मेरे पीछे ही क्यों पड़े हैं ? क्या कोई अन्य व्यक्ति आपको नहीं मिला जो बैकुंठ में जाने लायक हो ?"

यह हम सब की अवस्था है । हम समझते हैं कि यह काम और कर लें, यह काम रह गया इसे भी पूरा कर लें । इसी में मृत्यु आ जाती है । दुःख में रहते हुए दुःख से घबराते भी हैं परन्तु चेतते नहीं और न कोई ऐसे साधन करते हैं जिसके फलस्वरूप हम ईश्वर के चरणों में स्थान पा सके और अमर आनंद को प्राप्त हो ।

तो पहला काम है 'सचेत हो जाना' । यह श्री गणेश है साधना का, परन्तु गुरु की कृपा के बिना पूर्ण रूप से सचेत नहीं हो पाता, जागृत नहीं हो पाता । एक तो साधारण निद्रा है और एक माया की निंद्रा है जिसमें हम फंसे हुए हैं । जान बूझकर फंसे हुए हैं । एक मूढ़ व्यक्ति यदि कहें कि उसको कुछ समझ नहीं है लेकिन जो बुद्धिजीबी है, विद्वान हैं, समझते हैं, वे भी माया में बद्ध हैं । माया भी कई प्रकार की है । पैसा भी माया है, संबंधी, स्त्री, बच्चे, यह भी माया है, और भीतर में जो विचार उठते रहते हैं, यह भी माया ही का रूप हैं ।

अधिकतर व्यक्ति अपने विचारों में ही तृप्त रहता है । इस माया से छूटना बड़ा मुश्किल है । बहुत ही कठिन है । संध्या में बैठकर उपासना करते हैं-- कहते हैं कि साहब, क्या करें ? विचार आते रहते हैं । कैसे विचार आते हैं ? जब उत्तर मिलता है तो स्पष्ट हो जाता है कि कहां फंसे हैं ? जीव भी क्या करे ? कमजोर है । अपने बलबूते से निकलना बडा कठिन है । असंभव नहीं कठिन है । यदि भीतर में सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है, व्यक्ति सचेत हो जाता है, रोता है । तबी हजरत ईसा जैसे कहते हैं कि "खोजगे तो पाओगे" ऐसी स्थिति आ जाती है और तबी भगवान की कृपा से कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाता है जो हमें रास्ते पर लगा देता है और अपना बल देता है । उसको हम 'गुरु' कहते हैं । वह हमारा मार्गदर्शन करता है, हमें रास्ता बतलाता है कि किस प्रकार हम माया से मुक्त हों ।

गुरु महाराज (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) बताया करते थे कि मनुष्य चोला यदि लगातार चार पांच बार मिलता है और इन चारों पांचों जन्मों में यदि व्यक्ति आलस, प्रमाद, को छोड़कर खोज करता रहे, सचेत होकर प्रभु के चरणों में रोता रहे, तब कहीं जाकर गुरु मिलता है । सच्चा गुरु जो होता है वह परमात्मा ही होता है । गुरु में और परमात्मा में कोई अंतर नहीं है । इस गुरु वेश में संसार का जहां उद्धार हुआ है वहीं पतन भी हुआ है । हजारों लाखों लोगों ने गुरुवाइ को धन्धा ही बना लिया है । किसी की आलोचना करना उचित नहीं है परन्तु सावधान रहना करना यह भी एक फर्ज बन जाता है । तो गुरु यदि मिल जाए तो उसकी पहचान कैसे हो ? सच्चा गुरु कौन है ? और दूसरा (झूठा) गुरु कौन है ? इस पर कबीर साहब की बानी बड़ी स्पष्ट है, उन्होंने सच्चे गुरु की पहचान की मिसालें बतलाई है और दूसरे व्यक्तियों की भी पहचाने बतलाई है । सच्चा गुरु वही है जिसमें परमात्मा के वे गुण जो शास्त्रों में वर्णित है, जो हम महापुरुषों सुनते आए हैं, वो गुण यदि उस व्यक्ति में हो तो उसका दामन (पल्ला, आश्रय) पकड़ लेना चाहिए, यहां भी कबीर साहब सावधान कराते हैं कि हो सकता है कि परख करने में गलती हो गई हो तो सावधानी से काम ले । जिस प्रकार गुरु शिष्य की परीक्षा लेता है उसी प्रकार शिष्य को अधिकार है कि वह गुरु की परीक्षा ले । गुरु के पास बैठने से शांति मिलती है या नहीं, मन एकाग्र होने लगता है कि नहीं; बिना गुरु के श्री मुख से कहे, हमें अपनी त्रुटियां दिखने लगती है, उसके पास बैठने से हमें प्रेरणा मिलती है कि नहीं, हम अपनी बुराइयों को छोड़े, और उनके पास बैठने से बुराइयां छूटती भी है कि नहीं । जब तक बुरा भीतर से बुराइयां छूटेगी नहीं विकार दूर नहीं होंगे, मन स्थिर नहीं होगा, शांत नहीं होगा, आप चाहे जितनी उपासना कर लें, आपको साक्षात्कार अपने

स्वरूप का, चाहे परमात्मा का, चाहे गुरु का, चाहे गुरु के वास्तविक रूप का नहीं हो सकता । विकार छूटने चाहिए । जैसे दर्पण के सामने बैठने से अपनी शक्ल दिखाई देती है, उसी प्रकार महान व्यक्ति के पास बैठने से मन शांति, आनंद और सुख की अनुभूति करता है । यदि ऐसा हो तो सोचना चाहिए कि हो सकता है कि यह व्यक्ति जो है हमारा आदर्श है, ईश्वर प्राप्ति में सहायक हो । और आगे बढ़िए, देखिये कि वह व्यक्ति पैसे का भूखा तो नहीं है ? सम्मान का भूखा तो नहीं है ? यह हाथ पाव की सेवा कराने का इच्छुक तो नहीं है ? लालची तो नहीं है ? स्वयं माया में तो ग्रस्त नहीं है ? उसका जीवन आदर्श है या नहीं ? गुरु महाराज कहा करते थे कि यदि बाजार में कोई सौदा खरीदना हो तो दस दुकानें देखते हैं, सौदा परखते हैं, यह भी देखते हैं, कौन सी दुकान पर सौदा अच्छा मिलता है और सस्ते दामों मिलता है, जहाँ यह बातें पूरी होती है वहां खरीद लेते हैं ।

तो गुरु के करने से पहले पहले गुरु की पहचान कर लेनी चाहिए, इसमें कोई हर्ज नहीं किन्तु एक बार गुरु धारण करके फिर उसमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वास ले आना चाहिए । कबीर साहब ने ईश्वर की तुलना में गुरु का दर्जा बड़ा बताया क्योंकि वह हमें इश्वर के तदरूप करा देता है । कबीर साहब का तथा शास्त्रों का भी विश्वास है कि बिना गुरु के ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती है इसलिए गुरु को उन्होंने मुख्य रखा है । खुद भी खड़े हैं और भगवान भी । कबीर साहब स्वयं से प्रश्न करते हैं कि किसके चरण छुऊ । स्वयं हीं उत्तर देते कि गुरु की बलिहारी जाओ उनके चरण छुओ क्योंकि वे ही परमात्मा से मिलाते हैं । वास्तव में यह शब्दों का ही हेर फेर है, भाव एक ही है । **गुरु और ईश्वर एक है । ईश्वर हीं उस व्यक्ति में पूर्णत: समाया हुआ है । उसमें ईश्वर रूपी ज्योति जगमगा रही है,** प्रकाशित हो रही है । वो ही गुरु है, वो ही ईश्वर है, जैसे भगवान कृष्ण गीता में विश्वास दिलाते हैं कि जब भी संसार में असंतुलन होता है, परमात्मा स्वयं मनुष्यों के उद्धार के लिए आती हैं । वे ही गुरु रूप धारण करती हैं ।

यदि कोई सच्चा गुरु मिल जाये तो फिर क्या करना है ? उसकी सेवा । सेवा किस प्रकार की ? हाथ पांव की ? नहीं, ऐसी सेवा उसे नहीं चाहिए । वो क्या चाहेगा आपसे, कि हम अपने आदर्श के प्रति सदा जागृत रहें तथा उस आदर्श की प्राप्ति के लिए कुछ उपाय बताएगा । इन उपायों को सोच समझकर उसके उपदेशों को सुनकर उनका पालन करना, यही गुरु की सर्वोत्तम सेवा है । पैसों की सेवा बहुत साधारण सेवा है, हाथ पांव की सेवा उससे कुछ

और अच्छी है, परन्तु गुरु के आदेशों को बिना शंका के शत प्रतिशत बिना चूं - चरा किये पालन करना ही सर्वोत्तम सेवा है । ऐसी सेवा से ही मनुष्य का उद्धार हो जाता है ।

कबीर साहब ने इस सेवा के कई उदाहरण दिए हैं जैसे; एक व्यक्ति ईश्वर को नहीं मानता था । रास्ते में जा रहा था, वहीं कहीं कीर्तन भजन हो रहा था । उसने सोचा कि थक गया हूँ , चलो थोड़ी देर बैठ लूँ । उसने बातें तो बहुत सुनी लेकिन उन पर उसकी श्रद्धा नहीं थी । केवल एक ही बात उसको याद रह गई कि देवी देवताओं की परछाई नहीं होती क्योंकि उसका शरीर सूक्ष्म होता है । सूक्ष्म शरीर की परछाई नहीं होती स्थूल शरीर की होती है । घर गया दो चार दिन के बाद उसके घर में एक चोर आया । उसने एक देवता का रूप धारण करके उस व्यक्ति को डराया धमकाया कि तुम्हारे पास जितना धन दौलत हो वह मुझे दे दो, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश कर दूंगा । बहुत धमकाया । उस चोर ने ऐसा रूप धारण किया हुआ था जिसे देखकर पहले तो व्यक्ति डर गया परंतु ईश्वर कृपा से जो बात उसने सत्संग में सुनी थी वह उसे याद आ गया कि देवी देवताओं की परछाई नहीं होती । इसकी तो मेरी जैसी छाया है । ये कोई देवता नहीं है ये कोई बदमाश है जो मुझे धोखा देने आया है यह बात मन में आते ही उसने लाठी उठा ली और लगा उस चोर को पीटने । पहले तो वह चोर डांट रहा था, अब वह हाथ जोड़ने लगा । कहने का मतलब यह है कि सत्संग में केवल दो चार मिनट बैठने का तो यह प्रभाव हुआ । उस व्यक्ति ने सोचा कि थोड़ी देर के सत्संग का तो यह लाभ हुआ, यदि मैं रोज ही सत्संग में जाऊँ, महापुरुषों के उपदेश सुनूं और उनका अनुसरण करूं तो मुझे कितना लाभ होगा । तो गुरु का सत्संग मिले वह तो सर्वोत्तम है । यदि उनका सत्संग ना मिले तो जो गुरु-मुख हैं, रास्ता काफी चल चुके हैं, और आत्मा साक्षात्कार करने वाले हैं, उनका संग करना चाहिए । वो नहीं है तो जो ईश्वर का नाम लेवा है चाहे वे किसी संप्रदाय के हों उनका संग करें वो भी नहीं मिलते तो शास्त्रों का जिनमें हमारी श्रद्धा है जैसे गीता है, रामायण है, गुरुग्रंथ साहिब हैं, वेद है, उपनिषद हैं, इसका यह अध्ययन करना चाहिए । ये भी सत्संग कहलाता है ये भी एक प्रकार की भक्ति है । नौ प्रकार की भक्तियों में से यह भी एक प्रकार की भक्ति है । कुछ न कुछ तो करना चाहिए अभी ऐसा करते करते धीरे-धीरे श्रद्धा बढ़ती चली जाएगी तो परमात्मा ने चाहा तो उसकी प्राप्ति जल्दी हो जायेगी ।

कहने का मतलब यह है कि समय को व्यर्थ नहीं गंवाना है प्रत्येक व्यक्ति यही समझे कि उसका तो थोड़ा ही समय रह गया है । एक राजा का मंत्री था । वह किसी कारण

राज से विमुख हो गया, चाहता था कि राजा की हत्या कर दूँ । उसने राजकुमार से इस विषय में बात की क्योंकि वह भी चाहता था कि पिता की मृत्यु हो जाए और वह राजनगद्दी पर बैठे । एक पुत्री थी, अच्छी उम्र की हो गई थी, विवाह नहीं हो रहा था, वह किसी भी के साथ घर से भाग जाना चाहती थी । मन ही मन में वे सब लोग अपनी अपनी बातें सोच रहे थे । राजा ने अपनी प्रसन्नता के लिए, जैसा पहले के जमाने में रिवाज था, नृत्य का आयोजन किया, नर्तकी को बुलाया गया । उस संगीत नृत्य सभा में सबको बुलाया गया । अन्य व्यक्तियों के अतिरिक्त राजकुमार, राजकुमारी और मंत्री सभी आए । नर्तकी का नृत्य और संगीत शुरू हुआ । वह रात भर नाचती गाती रही । तबलची कुछ थक गया और ऊँघने लगा । जब तबला ठीक ताल से नहीं बजता , संगीत नीरस होने लगने लगता है । उस नर्तकी ने तबलची से कहा कि अब थोड़ी सी रात रह गई है, भोर होने में थोड़ा ही समय रह गया है, तुम सचेत हो जाओ और बचे हुए समय को सावधानी से निकाल दो तो हम राजा से इनाम पा जाएंगे, तुम भी धनी हो जाओगे । उस नर्तकी ने केवल एक ही तत्व की बात कही थी कि केवल थोड़ा सा ही समय शेष है । कहते हैं कि 'चोर की दाढी में तिनका' । मंत्री सोचने लगा कि मैंने राजा की तथा उनके पूर्वजों की सारी उम्र सेवा की है, अब तो मैं वृद्ध हो गया हूँ, जीवन अब थोड़ा सा समय रह गया है और अब मैं यदि हत्या का पाप करता हूँ तो मैं तो नरक में जाऊंगा ।

इस विचार से जब वह सचेत हुआ तो प्रसन्न होकर उसने नर्तकी को बहुत कुछ इनाम दिया । इस प्रकार उस राजकुमार ने भी सोचा कि अब तो राजा वृद्ध हो गया, इसके जीवन का थोड़ा सा ही समय सेशेष है, ज्यादा से ज्यादा ही एक या दो साल और जिएगा । इस समय इसकी हत्या करता हूँ तो पाप चढेगा और संसार भी मुझे भला-बुरा कहेगा । यह भी हो सकता है कि राज्य में विद्रोह हो जाए कोई अन्य व्यक्ति राजगद्दी पर बैठ जाए । मैं भी थोड़ी देर और प्रतीक्षा कर लूँ । यह सोचकर उसने नर्तकी को खूब इनाम दिया । राजकुमारी के मन में भी वही बात आई कि विवाह दो चार महीने में नहीं तो छह महीने के बाद हो जाएगा । राजकुमारी होते हुए भी यदि मैं महल से भाग जाऊं तो मेरा बड़ा अपमान होगा । मुझे तो प्रतीक्षा कर लेनी चाहिए । तो उसने भी नर्तकी को खूब भी इनाम दिया । राजा के मन में यह ख्याल आया कि इन लोगों ने क्यों इनाम दिया ? ये बड़ी साधारण नर्तकी है जिसका समाज में कोई आदर नहीं । उसने सब लोगों से पूछा कि तुमने नर्तकी को इतना इनाम क्यों दिया, तो उन सब ने (क्योंकि पाप सामने आ गया था, अत: प्रायश्चित करने में कोई संकोच नहीं हुआ) अपने मन की बात राजा से स्पष्ट कह डाली ।उस नर्तकी ने सोचा की मेरे यदि एक

शब्द कहने से कि अब थोडा समय रह गया है, सचेत हो जाओ तो इनका उद्धार हो गया है । यदि महापुरुषों के उपदेश के अनुसार भी अपना जीवन बना लूँ तो अच्छा है । यहां कहाँ गंदगी में फंसी रहूंगी यहाँ से निकल जाना ही अच्छा है । उसने भी अपने सब उपहार वापिस कर दिए और भगवान का भजन करने चली गई । राजा ने भी सोचा कि मेरे कारण ही तो सब कुछ हुआ तो उसने भी संन्यास ले लिया । राजपाट अपने राजकुमार को सौंप कर जंगल में तपस्या करने चला गया ।

जब हमारे हृदय में कोई इस प्रकार की वाणी प्रवेश कर जाती है तो उससे हमारा उद्धार हो जाता है । तो यही सोचना चाहिए की समय बिकुल थोडा है । अब तो है हीं थोडा, दो चार जन्म मिल जाए तब भी थोडा है । रोज़ सुनते हैं की किसी की मृत्यु हुई है, दुर्घटना से हो गयी है । कोई भोजन करने बैठा है, खाना भी नहीं खा पाया और उसकी मृत्यु हो गयी । थोड़े ही दिन हुए हैं, एक हमारे मित्र थे, दिन के १॥ बजे के करीब मेरे सुपुत्र से टेलीफोन पर बात चीत की है उन्होंने और फिर जाकर बच्चों के साथ खाना खाया है । फिर जैसे बड़े शहरों में होता है , ताश के पत्ते खेले हैं । उसकी पत्नी कहती है कि मेरे माँ के घर आज कीर्तन है, क्या आप वहाँ चलेंगे ? तो वो कहने लगे की आज मुझे कुछ थकावट सी हो रही है , आप चली जाइए । वो माँ के घर गयी है, बाद में उसने तुरंत हीं प्राण त्याग दिए । बिलकुल ठीक था । चार बजे उसकी मृत्यु हो गयी है । बहुत सज्जन व्यक्ति था, प्रभु से डरने वाला, आयु केवल ५० वर्ष या उसके लगभग होगी । तो मृत्यु का कुछ पता नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति के लिए समय बिलकुल हीं थोडा है । यह याद रखना चाहिए कि मृत्यु को किसी का लिहाज़ नहीं है । तब इंसान परमार्थ के रस्ते पर चलना शुरू कर देता है । साथ साथ इश्वर की कृपा के लिए भी प्रार्थना करते रहना चाहिए ।

(२४)

ईश्वर के गुणों को अपने व्यवहारिक जीवन में उतारना हीं सच्चा ईश्वर दर्शन है ।

झुंझुनू दि० ११-८-१९८२ प्रात:

जब से सृष्टि उत्पन्न हुई है और संसार में उसका विस्तार हुआ है,जैसा की हमारी संस्कृति बताती है तब से अस्सी लाख योनियों के बाद,यानी भिन्न भिन्न योनियों से निकलकर यह मनुष्य चोला मिलता है । इसको विज्ञान भी मानता है और वास्तविकता भी है । कितने दुःख सुख भोग कर हमें यह मनुष्य चोला मिला है परन्तु खेद की बात है कि मनुष्य भूल जाता है की यह उपकरण (मनुष्य चोला), यह विशेष उपकरण जिसका कोई मूल्य नहीं आंक सकता है और जो प्रभु ने हमे बड़ी कृपा करके प्रदान किया है,उसका लक्ष्य क्या है ? उसका क्या उपयोग करना है । हमारे काफी संस्कार पिछले जन्मों में खत्म हो गए परन्तु फिर भी कुछ संस्कार शेष रह गए । यह संस्कार ऐसे ही होते हैं कि कि जब तक मनुष्य चोला नहीं मिलता तब तक उनसे मुक्ति प्राप्त नहीं होती है । मुक्ति का मतलब है कि स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती । देवगण जो परलोक में रहते हैं उनके भी संस्कार शेष रह जाते हैं उनको भी जब तक यह मनुष्य चोला प्राप्त नहीं होगा, तब तक उनकी गति (मोक्ष) नहीं होगी । इसलिए वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु ! हमें मनुष्य चोला प्रदान करें ताकि अपने संस्कार भोग कर जल्दी से जल्दी आपके चरणों में पहुँच सके । इस मनुष्य चोली का उद्देश्य यह है कि पिछले जन्मों के जो संस्कार हमारे भीतर में जमा है, उन्हें भोग कर हम जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त करें । रमण महर्षि ने कहा है कि जब तक माथे पर लकीरें हैं जब तक कोई भी व्यक्ति यह कहे कि उसका उद्धार हो गया यह बात सही नहीं है । माथे पर लकीरों से उनका मतलब यह है कि जब तक पिछले संस्कार हमारे भीतर जमा है , वृत्तियाँ है, हमारा निषेध स्वभाव है, हमारा संसार के साथ राग-द्वेष है, इच्छाएं हैं, तब तक हम आवागमन से मुक्त नहीं हो सकते । भले ही शरीर को छोड़ने के बाद, एक नहीं अनेको शरीर क्रमश: मिले । जब तक संस्कार खत्म नहीं होंगे हम जन्म मरण के चक्र से नहीं छूट सकते । महात्मा बुद्ध ने भी यह कहा है और हमारे वेद शास्त्र भी यही कहते हैं । हमारे देश की जो कर्म थ्योरी (Theory) है वह भी

यही कहती है । हमारे देश के नहीं सारे विश्व के धर्म यहां तक कि ईसाई मत के लोग भी यही कहते हैं कि As you sow , so shall you reap -- जैसा बोओगे वैसा काटोगे । मुसलमानों का भी यहीमत है कि जैसा हम कर्म करेंगे वैसा ही फल मिलेगा । तो करें क्या ? इनसे कैसे मुक्त हो ? पातंजलि ने अपना योग शास्त्र यहीं से शुरू किया है और उनका पहला सूत्र इसी बात पर है कि सब वृत्तियों से ही निरोध अवस्था या मुक्त अवस्था है । साधन बताये हैं कि इन वृत्तियों में से कैसे निवृत्त हुआ जाए । महात्मा बुद्ध तो यही कहते हैं कि जब तक एक भी इच्छा शेष रह जाएगी तब तक जन्म मरण से छुटकारा नहीं होगा । वो भी कर्म थ्योरी (सिद्धांत) को मानते हैं । परमात्मा को वे नहीं मानते हैं, ऐसा लोग बाग कहते हैं । भले ही उनके साहित्य में ऐसी बात नहीं मिले । परन्तु उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि हम परमात्मा को नहीं मानते । उन्होंने यह कहा कि अपने आप को पहचानों उसके बाद सब सब बातें खुल जाएंगी । अपने आप को तभी पहचाना जा सकता है जब हमारी आत्मा के ऊपर आवरण जिन्हें पर्दे या कोष भी कहते हैं वे हट जाएं । जब तक ऐसा नहीं होगा हम अपने वास्तविक रूप को नहीं देख पाएंगे ।

भगवान ने अपने आपको तो छिपा लिया और मनुष्य को व्यक्त किया और अवसर दिया कि अपने संस्कार को खत्म करके अपने आप को गुप्त करो और मुझे प्रकट करो । संस्कार और परमात्मा दोनों ही हमारे भीतर है । हम सोचते हैं कि परमात्मा लाखों करोड़ों मील पर बैठा है इसे उसे आवाज देते हैं यह एक साधन है परन्तु परमातमा तो निकट से भी निकट है । विचार से तो क्या, कम्पुटर भी नहीं बता सकता वो इतना नजदीक है । परन्तु मन और संस्कारों की दीवार ने परमात्मा को ढक रखा है उसके दर्शन नहीं होने देते । हमारे सारे दिन का जो व्यवहार होता है उसमें राग-द्वेष भरा होता है । पुराने संस्कारों में और नए संस्कार जोड़ते चले जाते हैं यह अज्ञान वश होता है, चाहे आदमी बेपढ़ा हो या पढ़ा लिखा । जैसे रेशम का कीड़ा है अपने अंदर ही से ही रेशम का धागा निकालता और अपने आपको बांधता रहता है, उसी में खत्म हो जाता है, यही मनुष्य की हालत है । इस राग और द्वेष के धागे से हम अपने आप को बाँधते चले जाते हैं, इसी को बंधन कहते हैं । यह बंधन संस्कार रूपी कूड़ा करकट को और अधिक जमा किए जाता है । आए थे निर्मल होने के लिए, स्वतंत्र होने के लिए, मुक्त होने के लिए, परमात्मा या आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए, (यह सब एक ही बातें हैं) पर हम संसार में ऐसे फंस गए हैं, जैसे गजराज कीचड़ में फंस गए थे । इसी तरह प्रत्येक व्यक्ति माया रूपी कीचड़ में फंसा हुआ है । माया कहीं दूर नहीं है,

अपने मन को ही माया माया है । गजराज ने भगवान से प्रार्थना की तो उसका तो उद्धार हो गया परन्तु, हमें तो प्रार्थना करनी भी नहीं आती है । प्रार्थना तो हम तब करेंगे जब हम यह समझेंगे कि हम माया गया की कीचड़ में फंसे हुए हैं । कोई भी व्यक्ति यह समझने की कोशिश नहीं करता है कि वह माया में फंसा है ।

प्रत्येक मनुष्य इंद्रियों के विषय सुखों में लिप्त है और अपने जीवन का जो लक्ष्य है जिसकी पूर्ति के लिए वह इस संसार में मनुष्य चोले में आया है, उसे भूल बैठा है । इस तरह हम जानते हैं माया में फंसते हैं और अपने असली लक्ष्य से खबर रहते हैं । जिन्हें होश आ जाता है या जिनके अंदर जागृति उत्पन्न हो जाती है जैसे बिल्वमंगल जी (बाद में सूरदास जी) की हुई थी जिन्होंने आंखे फोड़ कर अपना सारा जीवन भगवान की भक्ति और प्राप्ति में लगा दिया वे अपने इस मनुष्य चोले का वास्तविक उपयोग करते हैं ।

दो रास्ते हैं-- एक भक्ति का दूसरा ज्ञान का । भक्त भगवान को बाहर से ढूँढता है ज्ञानी भगवान को अंदर खोजता है बात एक ही है । तो सूरदास जी को होश आ गया है, व्याकुल हो गए हैं, भगवान से मिलने के लिए और अपने आप को धिक्कारते हैं कि अरे मुर्ख ! इन्द्रिय भोगों के लिए तू ऐसा मतांध हो गया कि मिलने गया स्त्री से और सांप को रस्सी समझ कर ऊपर चढ़ गया । जिस पर चढ़कर तूने नदी पार की वह तख्त नहीं था, मुर्दे की शव था । इसी तरह हम सब मतांध हैं, हम भी इसी प्रकार के कर्म करते हैं । जब ईश्वर की कृपा होती है गुरु कृपा होती है तो हमें खूब ठोकरे खिलाते हैं और संसार के धक्के खा खा कर हमारे भीतर में जागृति उत्पन्न होती है । तब बुद्धि समझती हैं कि अरे ! अमूल्य समय खो दिया । मरते वक्त किस को होश आता है ।

ईश्वर की कृपा के बिना कुछ नहीं हो सकता है इसका मतलब यह नहीं कि सब कुछ उसके ऊपर छोड़कर प्रमादी बन जाए । नहीं, उसके लिए प्रयास करना चाहिए । प्रार्थना करनी चाहिए, व्याकुल होकर रोना चाहिए, कि बिल्वमंगल की तरह रोना चाहिए कि भगवान ! दर्शन दो । भगवान की प्राप्ति से क्या होता है ? गंगा में स्नान करते हैं तो क्या होता है ? शरीर की मलीनता धूलकर शरीर शुद्ध हो जाता है, आत्मा का जब साक्षात्कार होता है परमात्मा के जब दर्शन होते हैं तब मन की मलीनता प्रभु के प्रेम से धूल जाती है, आत्मा निर्मल हो जाती है । शिव भगवान के सिर से जो गंगा निकलती है, वह ज्ञान गंगा है । उस गंगा में स्नान करना है । यह गंगा सब जगह बह रही है । उस ईश्वरीय शांति की वृष्टि सब

जगह हो रही है । करना यही है कि शरीर मन और इंद्रियों को माया से हटाकर अपनी सूरत को प्रभु के चरणों में भगवान शिव की गंगा में लगाए । चाहे भक्ति के द्वारा करें चाहे ज्ञान द्वारा करें यह आपकी इच्छा है परन्तु पहले यह अवश्य समझ लीजिये कि हम कीचड़ में फंसे हैं । पहले यहाँ से तो निकलने की कोशिश करिये । यदि स्वयं नहीं निकाल सकते तो प्रार्थना कीजिये ईश्वर कृपा करके किसी योग्य व्यक्ति (गुरु) को आपके पास भेज देंगे या स्वयं गुरु रूप धारण करके आपकी सहायता के लिए आएंगे । प्रभु के हृदय में बड़ी ही करुणा है । उनको जब भी रो रो कर याद करता है व्याकुल होता है, वे तुरंत उसकी सहायता करते हैं । वे किसी ने किसी रूप में प्रकट होते हैं, गुरु रूप में या किसी दैवी रूप में या किसी अन्य रूप में आकर आपका मार्ग प्रदर्शन करते हैं । कभी कभी व्यक्ति रूप में और कभी कभी भी आप व्यक्त रूप में भीतर से प्रेरणा देकर आपका मार्ग प्रदर्शन करते हैं । परन्तु जिज्ञासु को होश में आना चाहिए, उसका विरद है कि यदि हम एक कदम उसकी तरफ चलते हैं तो वह दस कदम आगे आ जाता है । तस्वीर में माँ का रूप देखें तो वह हाथ फैलाए खड़ी है कोई आये तो सही यहाँ । क्या मांगता है ? सिर मांगती है । इसलिए जब माता के मंदिर में जाते हैं तो नारियल भेंट करते हैं वह नारियल प्रतीक है हमारे सिर का । वह प्रतीक है हमारे अहंकार का । अपना अहंकार अर्पण करना चाहिए । नारियल बड़ा कठोर होता है बड़ी मुश्किल से फूटता है । हम नारियल भेंट कर के खुश हो जाते हैं और बड़े से नारियल फोड़ते हैं । राजस्थान में सती का मंदिर वहां लाखों नारियल चढ़ते हैं परंतु कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हो जाता है जो अपने वास्तविक सिर यानि अहंकार अपनी मां के चरणों में अर्पण कर सके । यह केवल स्वामी राम कृष्ण जैसे महापुरुष कर सकते हैं । 'माँ, तू यदि आज दर्शन नहीं देगी तो सिर काट कर बलिदान कर दूंगा । ' जो सिर देता है यानि अहंकार का सम्पूर्ण त्याग करता है उसको प्रभु दर्शन देते हैं । तो साधना करने से पहले व्यक्ति को अपने प्रति जागृत होना चाहिए । मुझे परमात्मा ने यह मनुष्य चोला प्रदान किया है तो उसका उद्देश्य क्या है ? मुझे यहाँ आकर करना क्या है ? प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसके पास पैसा है चाहे नहीं है, जिसके पास संतान है जिसके नहीं है, जिसके पास मकान है, जिसके पास नहीं है, सब ही तो दुखी हैं, परन्तु कोई भी तो दुःख से निवृत होने के लिए तैयार नहीं है, उस दुःख में ही खुश है । ये ही भगवान बुद्ध कहते हैं कि मेरे पास वह व्यक्ति आए जो अपने मुख से कहे कि मैं सच्चे मन से दुखी हूँ और मेरे दुःख का कारण है । उसे होश आ जाए और वह दुःख से मुक्त होना चाहे । वह यह

भी समझने का प्रयास करे कि दुःख से मुक्त होने के बाद मेरी क्या अवस्था होगी । परंतु कोई भी तो यह कहने के लिए तैयार नहीं है कि मैं दुखी हूँ ।

हमारा दुःख क्या है ? अपने प्यारे पिता परमेश्वर से हम बिछड़े हुए हैं ? इससे ज्यादा क्या दुःख हो सकता है ? यदि परमात्मा मिल जाए तो संसार के जितने दुःख है उनका भान नहीं होता । जिसको आत्मा की अनुभूति हो जाए उसको कितनी भी आर्थिक कठिनाई आ जाए वह तो राराजाओं का राजा है । कबीर साहब की जीवनी पढिये । जुलाहे का व्यवसाय करते हैं कपडा बुनते हैं अपने हाथों से, कितना बुन लेते होंगे । कबीर साहब के समय में मजदूर की मजदूरी बहुत कम होती थी । रोटी भी नहीं पूरी होती थी परन्तु कबीर साहब कपड़ा बेचकर जितनी आय होती थी उसमें आधा गरीबों में बांट दे देते और शेष में अपना गुजारा करते थे । जरा विचार कीजिये कि उन दिनों कितनी कम आय होती होगी तब मजदूरों की हालत ऐसी थी जैसे कि आजकल पशुओं की है । बल्कि आजकल तो पशुओं की हालत भी शायद उससे अच्छी हो, उन दिनों मजबूरों की हालत व बड़ी सोचनीय थी । परन्तु क्या कबीर साहब को कोई दुःख था ? उन से ज्यादा सुखी संसार में शायद हीं कोई हो । संत रविदास जी को देखिये, जूते गांठने का व्यवसाय करते थे । आर्थिक दशा खराब थी । उनकी शिष्या थी रानी झाला । उन्हें अपने गुरुदेव की आर्थिक दशा देखकर बड़ा शोक हुआ कि मेरा गुरु ऐसे हालत में रहता है, वे एक बहुमूल्य हीरा दे गई और निवेदन कर गई कि प्रभु इसे बेच कर इससे प्राप्त धन को आप अपने इस्तेमाल में लाए । आपके बाद भी आपकी कई पीढ़ियों को कोई आर्थिक कठिनाई नहीं होगी । रविदास जी ने कहा कि अच्छा इसे छप्पर में रख दो । रानी हीरा यथा स्थान रखकर चली गई, एक साल बाद बाद जब वह फिर आई तो अपने गुरु की वही हालत देखी । पूछा कि महाराज ! यह आपकी क्या दशा है ? क्या आपने उस हीरे का उपयोग नहीं किया ? वह हीरा कहा गया ? रविदास जी ने कहा कि जहां तुम रख गई थी वहीं देख लो । देखा तो हीरा वहीं रखा था । कोई लोभ नहीं है । लाखों रुपये का वह हीरा था परन्तु उससे कोई मोह नहीं था । जूते गाँठ कर जो आय होती थी उसी में मगन रहते थे ।

हमारे दुखों कारण ही यह है कि हम अपनी आत्मा को नहीं पहचानते परमात्मा से बिछुड़ गए हैं । जब तक हमारी आत्मा का योग परमात्मा के साथ नहीं होगा हमारी आत्मा का योग उसके सच्चे पति परमात्मा के साथ नहीं होगा तब तक संसार के चाहे कितने भी पदार्थ प्राप्त हो जाये पर व्यक्ति को कभी भी सच्चा सुख नहीं मिल सकता ।

सिकंदर बादशाह के पास किस चीज की कमी थी ? क्या वह सुखी था ? आप आपस में ही देखें आप सब पर परमात्मा की कृपा है कि क्या आप सब सुखी है ? किसी के शरीर का दुःख है किसी को पैसे का दुःख है किसी को कोई दुःख है तो किसी को कोई । अनेको दुःख ही दुःख है । सच्चा सुख है ही नहीं, सच्चा सुख तो प्रभु को मिलने में ही हैं और वही हमारे जीवन का लक्ष्य है । यही मनुष्य के झोले का ध्येय है कि इसी जीवन में हम आत्मा का साक्षात्कार कर लें भगवान के दर्शन कर लें ।

भगवान के दर्शन के भी बहुत से लोग सही अर्थ नहीं समझते । गुरु महाराज (महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज) ने गुरु शिष्य संवाद नामक पुस्तक में बड़ी स्पष्टता से लिखा है कि दर्शन यह नहीं है कि बाहर से तस्वीर के दर्शन कर लिए, भगवान भी प्रगट हो गए, प्रकाश भी दिखाई दिया, शब्द भी सुनाई देने लगा ।और कभी कभी स्वप्न में ईष्ट देव या गुरु के दर्शन होने लगे । यह संकेत है कि आपका रास्ता ठीक है । परंतु गुरु महाराज ने कहा कि परमात्मा के गुणों को सराहना उनकी कीर्ति करना यह ईश्वर की उपासना है । उपासना का मतलब है 'उप + आसन' यानी परमात्मा के समीप अपना आसन लगाना । परन्तु जो गुण ईश्वर में है वे हीं जिज्ञासु में उतर आने चाहिए, वह असली ईश्वर दर्शन है । जल हीं जल में लय हो सकता है । जिन व्यक्तियों का एक जैसा स्वभाव होता है उनका ही परस्पर प्रेम हो सकता है । एक व्यक्ति प्रेम करता है दूसरा घृणा करता है तो उनका संबंध कितनी देर ठहरेगा । जब तक हमारे भीतर में ईश्वर के गुण पूर्णत: नहीं आते । तब तक ईश्वर के निरंतर दर्शन नहीं हो सकते । एक क्षण भर के दर्शन से कुछ नहीं होगा । सुर दास जी को भी दर्शन हुए, भगवान आगे आगे हैं, सूरदास जी पीछे पीछे तो सुर दास जी कहते हैं कि भगवान ! आप कहां भागेंगे । मैंने तो आप को हृदय में आपको इतना जकड़ लिया है कि वहां से भाग कर आप जाएं तब आपको मर्द जानूंगा । हृदय में जकड़ने या बसाने का क्या मतलब है ? क्या किसी तस्वीर को या रूप को बसाना है ? यह तस्वीर की, या रूप की, शुरू शुरू की साधना है वह मन को एकाग्र करने के लिए है । मन में बसाने का मतलब यह है कि हमारे रोम रोम ने ईश्वर के गुण बस जाने चाहिए और वे अप्रयास ही हमारी वाणी द्वारा विचार द्वारा और व्यवहार द्वारा व्यक्त होते रहे । मैं प्रेम की साधना करता हूँ परन्तु यदि मेरे व्यवहार में घृणा है तो यह कोई साधना नहीं है । ये कोई ईश्वर दर्शन नहीं है, यह कोई आत्मा का साक्षात्कार नहीं है, यदि मैं ईश्वर की पूजा करता हूँ तो मेरे हृदय में विशालता होनी चाहिए । मेरे लिए हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई में कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए । सभी एक है

क्योंकि सब में एक ही तो आत्मा है । प्रभु सबकी रक्षा करते हैं सबके दुखों में उनकी कृपा रहती है क्योंकि प्रभु तो करूणानिधि है । यदि मैंने ईश्वर को हृदय बसाया है तो उनका जो करुणा का स्वभाव है वो मेरे विचारों में, मेरे वाणी में मेरे व्यवहार में व्यक्त होना चाहिए । सूर्य बिना किसी बदले के आपको प्रकाश देता है । प्रभु हमारा पालन पोषण करते हैं तो वो हमसे कोई बदला नहीं चाहते । इसी प्रकार में संसार की सेवा करूँ तो दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए, दूसरों की शांति और आनंद के लिए, बिना किसी आशा को मन में रखकर, निष्काम भाव से । कोई आशा न हो कोई इच्छा न हो, स्वभाव हीं ऐसा हो जाये सहज स्वभाव बन जाए । इसी को सहज अवस्था कहते हैं । तो यदि ईश्वर के गुण आपके व्यक्तित्व में प्रतिक्षण व्यक्त होते रहते हैं जैसे बिना प्रयास सूर्य से प्रकाश स्वत: ही व्यक्त होता रहता है उसे 'दर्शन' कहते हैं । इसी प्रकार दर्शन का प्रभाव यह है कि मेरा भी रोम रोम ऐसा बन जाए कि जैसे बिना प्रयास के परमात्मा अपने गुणों को व्यक्त करता रहता है, कोई बंधन न हो, कोई आशा कोई इच्छा न हो, किसी के साथ कोई मोह न हो, सबके साथ समान प्रेम हो । ईश्वर के गुण आने चाहिए । हमेशा याद रखना चाहिए ।

लोग-बाग पत्रों में लिखते हैं कि पहले तो प्रकाश दिखता था अब नहीं दिखता कोई हर्ज नहीं । प्रेम प्रकाश से अधिक महत्वपूर्ण है, ज्यादा अच्छा है । आगे बढिए परन्तु देखने वाली बात यह है कि साधना करते हुए इतने साल हो गए मेरे में ईश्वर के गुण अंकित हुए या नहीं और वेअंकुरित होकर प्रफुल्लित हुए हैं या नहीं । वे गुण विकसित होते हैं कि नहीं । आप बेशक चौबीस घंटे की समाधि लगा लीजिये मन एकाग्र हो जाएगा तो ब्रह्म विद्या आपने ग्रहण कर ली । आपने बी० ए० पास कर लिया । आपके पास गांव की कोई स्त्री आती है कि मेरी एक चिट्ठी लिख दीजिये । आप कहते हैं कि मुझे तो चिट्ठी लिखनी नहीं आती है । तो आपका बी० ए ० पढना क्या मतलब रखता है । वो डिग्री तो निरर्थक है । इसी प्रकार यदि साधना करते हुए आप में ईश्वरके गुण व्यक्त नहीं होते हैं तो साधना में कमी है । और आगे बढिए । जैसे विज्ञान में विद्यार्थी पुस्तके (थ्यूरी) भी पढ़ते हैं और प्रैक्टिकल भी करते हैं और जब तक विद्यार्थी प्रैक्टिकल में पास नहीं होता, उसको उत्तीर्ण नहीं समझा जाता । इसी तरह जो कुछ भी अभ्यास या साधना आप करते हैं सभी ठीक हैं कोई गलत नहीं है मगर इस अभ्यास का परिणाम देखना चाहिए । संतों में कितनी सहनशीलता है कितनी शांति है । संतों में इतनी शांति है तो परमात्मा में कितनी होगी ?

एक बार स्वामी दयानंद जी अपने गुरु स्वामी बृजा नंद जी के पास तीन चार दिन नहीं आए, और जब आये हैं, गुरुदेव वृद्ध थे, कमजोर थे, उन्होंने दयानंद जी की छाती में एक मुक्का मारा । तो स्वामी जी ने न तो बुरा मनाया न पीड़ा का आभास किया, अपने गुरुदेव का हाथ पकड़ लिया । स्वामी दयानंद जी का शरीर बड़ा हृष्ट पुष्ट था बलवान था । कहा कि प्रभु, मेरा शरीर तो पत्थर जैसा कठोर है और आपके हाथ अति कोमल हैं , उनमें चोट लग गई होगी । गुरदेव में गुस्सा था कि दयानंद जी बिना उनसे पूछे ३-४ दिन के लिए बाहर कैसे चले गए । खैर, वह लंबी कहानी है । कहने का मतलब यह है कि एक संत में इतनी सहनशीलता है तो परमात्मा में कितनी होगी । तो क्या सहनशीलता का गुण हमारे व्यवहार में आया ? इसी प्रकार और ईश्वरीय गुणों को भी देखना चाहिए । प्रात: जब हम बंदना पढ़ते हैं तो उसमें ईश्वर के बहुत गुणों का बखान आ जाता है । केवल पढ़ लेने से क्या लाभ है ? प्रत्येक गुण वाचक शब्द में प्रभु की गंगा बहती है, उस गंगा में स्नान करना चाहिए प्रत्येक शब्द में जो ईश्वर का भाव बसता है उसे अपने अंतर में बसा लेना चाहिए । कभी कभी उन पर मनन करना चाहिए----यही स्वाध्याय है कि -इतने साल मुझे साधना करते हुए हो गए, मेरी हालत क्या है ? क्या मेरे स्वभाव में कुछ अंतर आया क्या ? क्या अब भी क्रोध आता है ? अहंकार शेर है ? कभी घृणा मन में आती है ? द्वेष बाकी है । अपने आप को उंचा और दूसरों को नीचा समझता हूँ, यह गलत है । एक कोशिश करिये और अपने से ठीक न हो तो गुरु को लिखिए उसके पास जाकर रोइए । पहले तो ईश्वर के चरणों में बैठकर कोशिश करनी चाहिए, रोने से बहुत कुछ सफाई हो जाती है,किन्तु सच्चे हृदय से रोइए । दिखावटी रोना नहीं होना चाहिए । उसमें व्याकुलता होनी चाहिए । यदि कोई आदत कोशिश करने पर भी नहीं जाती है तो उपवास करिए, चौबीस घंटे भोजन मत कीजिये और प्रण कीजिये कि कल से यह बात पुन: नहीं होगी । इस तरह धीरे धीरे अपने आप को सुधारिये । साधना भी करिये और उसके साथ साथ अपने आपको देखते चले जाइये की साधना का प्रभाव में व्यावहारिक जीवन पर कितना पर प्रभाव पड़ा है । दोनों करने चाहिए यह मेरी तुच्छ राय है । कई बार महापुरुष का ख्याल है और सही भी, क्योंकि उस शिखर तक हम पहुंचते नहीं है इसलिए मैं आपसे हाथ जोडकर कह रहा हूँ कि अपना निरीक्षण करना चाहिए । गुरु महाराज ने भी यही कहा है की मनन करना चाहिए । साधना के बाद दो चार पांच मिनट रोज न सही सप्ताह में एक या दो बार, मनन अवश्य करना चाहिए । गुरु की वाणी पर विचार करना चाहिए और अपने भीतर में देखना चाहिए कि हमारे भीतर क्या कमियां हैं उनको दूर करने की कोशिश करनी चाहिए । इन

कमियों को ही हम 'बंधन' कहते हैं और इनसे मुक्त होना है स्वतन्त्रता कहलाता है । मोक्ष की अवस्था क्या है ? फिर वही आ जाता है कि ईश्वर के गुणों को धारण करना । ईश्वर निर्गुण स्वरूप है । ईश्वर प्रेम स्वरूप है ---- वह प्रेम जो शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता, वाणी असमर्थ है उस प्रेम का वर्णन करने में । यह षट शास्त्र इसी तरह बने । जैसा जैसा महापुरुषों को अनुभव हुआ, उसी प्रकार उन्होंने वर्णन कर दिया । इसका वर्णन करना बडा कठिन है । केवल यही कर देते हैं कि यह गूंगे का गुड है । जिसको इस प्रेम की अनुभूति हो जाती है कोशिश करता है व्यक्ति कि उसको शब्दों में वर्णन करे जिससे दूसरों का भला हो परन्तु इस प्रयास में वह पूर्णतः सफल नहीं हो पाता । वह वर्णन की नहीं, अनुभव की वस्तु है । भगवान तो करुणा सागर है उसमें इतना प्रेम है इतनी शक्ति है, इतनी शीलता है, इतना आनंद है, कि सारे संसार के सुख एक तरफ हो और परमात्मा के एक क्षण का आनंद एक तरफ हो तो भी वह उसकी कोई तुलना नहीं कर सकते । उस क्षण के लिए बड़े बड़े भतृहरी जैसे राजा लोग राजपाठ छोड़कर जंगलों में चले जाते है , और भिक्षा मांग कर गुजारा करते हैं--काहे के लिए--- कि वह एक प्रेम की बूंद कहीं से मिल जाए, रोम रोम ईश्वरमय हो जाये । ये संतों का रुप है ये गुरुजनों का रूप है, यह परमात्मा का रुप है । इसी रूप में प्रवेश होकर, इसी में लय हो कर, इसी में वापिस आना है, वही मुक्तावस्था है । गंगा में स्नान करके, यदि बाहर आकर शीतलता की अनुभूति नहीं होती है तो गंगास्नान निरर्थक है । सत्संग में आए हैं आपको थोड़ी सी शांति नहीं मिलती है तो सत्संग का भी कसूर हो सकता है । सत्संग कराने वालों को देखना चाहिए कि उसमें अपने में क्या कमी है । यदि क्रोध की दशा में सत्संग में बैठेंगे तो यह हो सकता है कि क्रोध के विचार अधिक आयें । जब भी साधना में बैठे पूर्ण शांत हो कर बैठे । इसलिए कहते हैं कि यह पुरानी सनातन रीति है कि गंगा स्नान करने से पहले बाहर कुँए पर स्नान क्र लें । इसका मतलब यही है कि सत्संग में जाने से पहले अपने मन से बुराइयों को धो डालिए और फिर अपने इष्ट देव के चरणों में बैठिये । सुबह जब जाते हैं परमात्मा के चरणों में, साधना करने बैठते हैं तो अपने मन को शांत कर लीजिये ।

गुरु महाराज ने कुछ प्रेमियों को बताया हुआ है कि सुबह से नाभी से सांस लेकर सात दफा या दस दफा 'ॐ तत् सत्' (कुछ नहीं है सिवाय परमात्मा के) इसका अभ्यास करें । गुरु रूप में लय हो कर यह साधना की जाती है । गुरु कौन है ? सत-चित्त-आनंद स्वरूप परमात्मा । इसके बाद साधना शुरू कीजिये, उसके बाद गुरु वंदना पढ़िये । जिसके पास जा रहे हैं पहले उसके गुणों को सराहना चाहिए । जो भजन या शब्द या वाणी

आपको अच्छी लगे, प्रभु की तारीफ में उसको तल्लीनता से गाइए, तब साधना शुरू कीजिये। इसी प्रकार जब साधना खत्म करें, प्रसाद बंटे तो प्रसाद लेना चाहिए, आशीर्वाद के रूप में। पुन: प्रभु के गुणों को सराहना चाहये , कीर्ति करनी चाहिए। संत उनको कीर्तन बोलते हैं। प्रभु के गुणों को जितना सराहेंगे उतना ही अधिक लाभ होगा। गुणों को सराहते सराहते आप विस्माद में चले जाइये और विस्माद में आपका मन शीतल हो जाएगा। केवल परमात्मा रह जाएगा। ॐ तत् सत्'

- नोट:-- इस अभ्यास की कोई भी व्यक्ति अपने गुरु से पीछे पूछे बिना न करें।

(२५)

वीर बनो

झुंझुनू, जन्माष्टमी, प्रातः १२-८-८२

आज सारे देश में उल्लास है क्योंकि आज के दिन भगवान हमारे जैसा ही मनुष्य चोला धारण करके इस भारत भूमि पर अवतरित हुए थे । आज के दिन कृष्ण भगवान की हम पूजा करते हैं, खुशी मनाते हैं । गुरुदेव परम संत डॉक्टर (श्री कृष्ण लाल जी महाराज) का आदेश था कि ईश्वर या महापुरुषों की पूजा या गुरु की पूजा उनके गुणों को सराहना और अपना अपनाना है । केवल अच्छे वस्त्र पहनकर जिह्वा के रसों की संतुष्टि कर के रसों में फंस जाना यह पूजा नहीं है । सुदामा जी की कथा आपने कल सुबह की बैठक में सुनी थी सुदामा जी अपनी धर्मपत्नी के बार बार कहने पर द्वारका में भगवान के चरणों में गए हैं वहां सिंहद्वार पर खड़े हो जाते हैं । सुदामा जी की सोचनीय अवस्था को देखकर करुणामय भगवान स्वयं बाहर आते हैं और उनको भीतर ले जाते हैं । गरीब सुदामा फटे पुराने मैले कपड़ों में हैं, उनका आलिंगन करते हैं । उनकी प्रदक्षिणा करते हैं । हम लोग मंदिर में जाते हैं भगवान के दर्शन करके उनके चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं । यह एक सम्मान का तरीका है । भगवान स्वयं हीं उस दरिद्र अनाथ ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करते हैं । फिर स्वयं सिंहासन पर सुदामा जी को बैठाते हैं और उनके चरण का रुकमणी जी के साथ मिलकर धोते हैं और वहीं चरण धूल मिश्रित चरणोंदक दोनों स्वीकार करते हैं । कितनी दीनता है । सुदामा चकित हैं, बोलते नहीं है । भगवान बोलते जा रहे हैं कि देखो हम दोनों इकट्ठे विद्यार्थी थे, दुर्वासा ऋषि के आश्रम में किस प्रकार खेला करते थे । सुदामा सुन रहे हैं मगर उनकी जुबान बोल नहीं रही है । भगवान उन्हें पुराने दिनों की याद दिलाते हैं जब आपस में खेलते थे । अंत में भगवान ने पूछा है कि भाभी ने क्या भेजा है । सुदामा फिर भी मौन है, भगवान उनकी बगल में से कच्चे चावल, जो सुदामा की पत्नी ने भेजे थे निकाल कर तीन चार दफा खा जाते है । रुक्मिणी जी पकड़ती है कहीं पेट में दर्द न हो जाए परन्तु भगवान कहा मानने वाले हैं । वह चावल क्या खाते थे, सुदामा जी का उद्धार करना था । चार पदार्थ यानी काम अर्थ धर्म मोक्ष सब सुदामा जी को प्रदान कर दिए । द्वारका से सुदामा जी खली हाथ जाते है । उदास हैं कि भगवान बातें ही करते रहे और हाथ में कुछ नहीं रखा । घर पहुंचते हैं तो जो कुछ हुआ आप सब लोग जानते

हैं । मेरे कहने का मतलब केवल यही है कि भगवान इतने महान होते हुए भी उनमें कितनी दीनता है । यदि हम भगवान की पूजा करते हैं तो हमें भी दीनता अपनानी पड़ेगी ।

अभी कबीर साहब की वाणी अपने सुनी---- **"राजन कौन तुम्हारे आवै",** रखो साग साग विदुर को देख्यो, वह गरीब मोहे भावै" भगवान दुर्योधन से कह रहे हैं कि हे राजन, मैं तुम्हारे घर पर क्या करने आऊं, तुम्हारे महलों में क्या करने आऊँ । दुर्योधन ने देखा कि विदुर जी जो बहुत गरीब थे, टूटी फूटी कुटिया में रहते थे, पास पर्याप्त भोजन भी नहीं था मगर भगवान वहीं जाकर रहते, रात उसी व भक्त के घर व्यतीत करते थे । विदुर के घर जो खाना बनता था वह कच्चा पालक का साग होता था उसमें नमक भी नहीं था और उसके ऊपर भगवान को पानी मिल जाता था, इसके अतिरिक्त वह गरीब और कुछ सेवा नहीं कर पाता था । दुर्योधन कहता है कि मेरे घर में छप्पन प्रकार के भोज्य पदार्थ हैं, आप उन पदार्थों को, खीर आदि पदार्थों को छोड़कर, यह साग क्यों खाते हैं, जिसमें नमक भी नहीं, कोई मीठा भी नहीं है । आप मेरे महलों में चलिए । कबीर साहब अपनी वाणी में इसका वर्णन करते हैं कि **"राजन कौन तुम्हारे आवै"** और दुर्योधन के लिए कहते हैं कि अपनी धनवान हस्ती को यानी अपने धनाढ्य अस्तित्व को अपने उच्चतर स्तर को देखकर तुम्हारी बुद्धि खराब हो गई है । यह अहंकार के कारण है । मुझे तो गरीब भाते हैं । विदुर चाहे तुम्हारी निगाहों में कितना ही गरीब हो लेकिन वह मुझे अति प्रिय है क्योंकि उसके हृदय में प्रेम है भगवान के लिए । उसके हृदय में गरीबी है, दीनता है, विनम्र भाव है । वह भगवान के लिए हमेशा व्याकुल रहता है । जब मैं रात्रि को उसकी कुटिया में रहता हूँ तो रात भर उस कुटिया में प्रभु के गुणगान होते हैं । मुझे उसका आनंद मिलता है । तुम्हारे यहाँ जाकर नाच गानों में मुझे क्या मिलेगा । और फिर दुर्योधन जाति अभिमानी है । वह कहता है कि इस रास्ते पर किसने जाति देखी है । कबीर साहब ने यह विशेष कर बताया है, इस जातपात मे ने भारत में हिन्दुओं को खा डाला । हिन्दुओं की संख्या कम हो गई है । अधिकांश हिंदू मुसलमान या अन्य धर्मों में चले गए । इसी जातपात के कारण अब भी देखिये जब भी चुनाव होते हैं तो जात पात का नंगा नमूना कैसा होता है । तो कबीर साहब कहते है कि परमार्थ के रास्ते पर जाति का क्या महत्व है ? यहाँ तो प्रेम का महत्व है । कर्मों से ब्राह्मण हो सकता है, कर्मों से क्षत्री हो सकता है, कर्मों से वैश्य हो सकता है, कर्मों से शूद्र अजामिल पंडित होता हुआ शास्त्रज्ञ था परंतु उसके कर्म खराब हुए तो उसको चांडाल बना दिया गया । वह चांडाल के ही रूप में रहने लगा । दुनिया उसको चंडाल कहने लगी, कोई भी व्यक्ति उसको ब्राह्मण नहीं कहता था । ब्राह्मण वह है जो

ब्रह्म को पहचानता है । ब्रह्म में विचरता है । यह जात पात जिस समय बनाई पता नहीं उस समय इसका क्या उपयोग था । परंतु इसके बाद तो जितने भी महापुरुष हुए हैं भगवान राम से लेकर कृष्ण जी और कलयुग में भगवान बुद्ध और भगवान महावीर और उसके बाद संतों ने तो इसका बहुत ही खंडन किया है । परन्तु यह एक ऐसी बीमारी हमें चिपटी है कि इससे मुक्त नहीं हो रहे हैं । कबीर साहब कहते हैं कि इस रास्ते पर जाति का क्या महत्व है ? भगवान आते हैं विदुर जी के घर, विदुर जी की पत्नी वस्त्रहीन हो कर स्नान कर रही हैं । जब पता लगता है कि भगवान आ गए है, वह प्रेम में इतना आपे से बाहर हो गई कि भगवान को वहीं निर्वस्त्र केले के छिलके खिला रही है केले का फल फेंके जा रही हैं । वह प्रेम के नशे में मग्न हैं । उसे शरीर का कोई होश ही नहीं है । भगवान ने अपना पितांबर उनको उढ़ा दिया है और बड़े मजे से केले के छिलके खा रहे हैं भगवान को तो यह भाव पसंद है । भाव के भूखे है बुद्धि की चतुराई भगवान को पसंद नहीं है सरलता विनम्रता दीनता प्रेम विरह यह भावना को भगवान को पसंद है । साधक भगवान की पूजा करता है आज के दिन या आगे पीछे तो भगवान के गुणों की पूजा करनी चाहिए इन गुणों को अपनाना चाहिए । और इन गुणों को अपने व्यवहार में व्यक्त करना चाहिए । भगवान तो एकता के स्वरूप हैं यदि हम भगवान की पूजा करते हैं तो हमारे भीतर में एकता का ही भाव होना चाहिए । हमारी आंखों में मेरे हृदय में सबके प्रति सम्मान हो कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं, क्योंकि सब में ही परमात्मा हैं । यदि वह यह भावना हमारे भीतर में नहीं पैदा होती तो हमारी साधना व्यर्थ है । भगवान स्वयं दीन रूप हैं । सुदामा विदुर व अन्य भक्तों की जिस प्रकार से उन्होंने सेवा की है इसी प्रकार भगवान को भी वही व्यक्ति अच्छे लगते हैं जिनके व्यवहार में, स्वभाव में, दीनता है, दुर्योधन के स्वभाव में दीनता नहीं है इसलिए भगवान का संबंध होते हुए भी वह परमार्थ से वंचित ही रहा । अर्जुन में दीनता थी वह सब कुछ ले गया ।

इसी प्रकार आप लोग भी गीता पढ़ते हैं तो उसमें उनकी शिक्षा से तत्व छांट लीजिये । भगवान की मुख्य शिक्षा का मुख्य रूप है 'समता' । इस संसार में रहते हुए कौन सा ऐसा व्यक्ति है जिसको सुख दुःख नही व्यापता । तो भगवान ने अर्जुन को हमारा प्रतीक बनाकर समझाया है कि जीवन में रहते हुए उत्तेजना मिलेंगे । सुख में भी उत्तेजना मिलती है दुःख में भी मिलती है परन्तु व्यक्ति का कर्तव्य है, धर्म है कि वह सम अवस्था में रहे, विचलित न हो । अर्जुन प्रश्न पूछता है कृष्ण से और उसका उत्तर देने की भगवान कोशिश कर रहे हैं । अर्जुन स्वयं भी ज्ञानी है, विद्वान है, शास्त्रों का ज्ञाता है, परन्तु विज्ञानी नहीं था

उनके जीवन में शास्त्रों के व्यावहारिक बातें नहीं थी । अगर वह विज्ञानी होता तो वह प्रश्न ही नहीं करता । वो प्रश्न करता है कि हे भगवान ! जिन मनुष्यों की आप इतनी उपमा दे रहे हैं, यानि स्थितप्रज्ञ व्यक्ति, आत्म स्थित व्यक्ति, उसका व्यवहार कैसा होता है ? वह कैसे विचरता है भगवान उसे समझाते हैं कि वह द्वंदों से मुक्त होते हैं, दुःख सुख उन पर कोई प्रभाव नहीं कर सकता । लाभ हानि का कोई प्रभाव नहीं करते है । यह बात केवल पढ़ने के लिए नहीं है इन मुख्य गुणों को जीवन में अपनाना है । महाभारत का युद्ध तो हर वक्त, हर व्यक्ति के भीतर में होता ही रहता है । इस संग्राम में विजय प्राप्त करनी है । कुरुक्षेत्र का मैदान, धर्म क्षेत्र का मैदान, कर्म क्षेत्र का मैदान, जो भी कुछ कह लीजिये, इसमें जिज्ञासु को विजय प्राप्त करनी है अर्थात अपने मन पर, अपनी वृत्तियों पर, अपने शरीर पर, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी है । विजय प्राप्त करके क्या करना है, समता में रहना है,

दुःख सुख जे परखे नहीं, लोभ मोह अभिमान ।

वही उपदेश संतों ने भी कहा है कि दुःख सुख में जो व्यक्ति विचलित नहीं होता वह व्यक्ति तो स्वयं भगवान है । भगवान का यही तो मुख्य गुण है । जैसे कमल पुष्प पानी में रहता है परन्तु पानी में जो तरंग आती है उसमें वह प्रभावित नहीं होता । यही उपदेश है गीता का यही उपदेश सभी संतों ने दिया है कि यह संसार तो माया का रूप है आप इससे भाग नहीं सकते दुःख भी आयेंगे , सुख भी आएंगे परंतु जिज्ञासु को किस तरह रहना है कमल पुष्प की तरह । यदि वह कमल पुष्प की तरह रहना सीख जाता है वह शख्स भगवान है । उसका जीवन सराहनीय है । उसकी किस्मत प्रारब्ध बहुत तेज़ हैं । दूसरा गुण जो गीता में वर्णित है वो ज्यादा विज्ञानी है, उसको हमें अपनाना है, यदि हम सुख का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं । हम संस्कार लेकर आए हैं, यह मनुष्य चोला मिला है इन संस्कारों से निवृत हो जाए---- क्योंकि जब तक संस्कारों से निवृत्त नहीं होंगे, हमें मोक्ष प्राप्त नहीं होगा । भगवान अर्जुन से कह रहे हैं कि इन संस्कारों से अगर तुम्हें लड़ना है तो ईश्वर का आश्रय लेकर लड़ो । प्रत्येक व्यक्ति को जिज्ञासु को गुरु का दामन पकड़कर या ईश्वर का आश्रय लेकर या शास्त्रों का आश्रय लेकर इस संसार रूपी कुरूक्षेत्र में आगे चलना है । पिछले संस्कार तो भुगतने हीं है परन्तु आगे के लिए संस्कार नहीं बनने देना है क्योंकि मरने से पहले अगर हमारे संस्कार खत्म नहीं होते, नए संस्कार नहीं बनते, तब तो हमें आगे जाकर सुख मिलेगा यानि मोक्ष प्राप्त होगी अन्यथा फिर वही जन्म-मरण के चक्कर में पड़ जाएंगे । भगवान ने बड़ी सरलता

से सबको समझाया है और ऐसा उपदेश दिया है कि पढ़ा लिखा आदमी, स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी उसका पालन कर सकते हैं । अर्थात जो भी हम काम करें उसके फल के साथ हम चिपके नहीं उसके साथ हमारी आसक्ति न हो उसके साथ हमारा मोह ना हो ।

बच्चे को पढ़ाते हैं "Forgive and Forget" क्षमा कर दो और भूल जाओ । परंतु मनुष्य का स्वभाव ऐसा है कि वह भूल नहीं सकता । किसी ने गाली दे दी उस गाली का घाव जो चित् पर बना जाता है वह मिटता ही नहीं है । गाली देने वाला चला गया शायद वह मर भी गया उनकी संतान भी मर गई होगी परन्तु जिसको वह गाली का घाव लगा उसका वह चिंतन करता ही रहता है । एक घाव लगने के बाद चिंतन करने की कारण यह घाव और गहरा होता जाता है और संस्कार गहरा होता जाता है और मनुष्य भूलता नहीं । साधारण सी बात है आप सब लोगों ने जड़ भरत जी की कहानी तो सुनी ही होगी । एक मृग के बच्चे को मरने से बचा लिया उसका पालन पोषण किया और थोड़ा सा उसके साथ प्यार किया इसी बात पर महर्षि को तीन बार जन्म लेने पड़े । सुबह से शाम तक अपनी हालत को देखिए और सोचिए कि हमारी हालत क्या होगी किसी से सहानुभूति के बाद थोड़ा सा मोह हो गया । पढ़ा लिखा व्यक्ति कहेगा कि कैसी बात है एक तो पुण्य किया और तीन जन्म लेने पड़े । पुण्य तो ठीक किया लेकिन संस्कार बन गया । मृग का बच्चा एक दिन खो गया था तो भरत जी रोने लगे । जो इंसान मोह में फंस जाता है (मोह के दो रूप हैं 'राग और द्वेष') उससे संस्कार बनते हैं । इसलिए भगवान ने कहा है कि कर्म के साथ आसक्ति न हो । यही नहीं कर्म का जो फल है उसके साथ ही बंधन नहीं होना चाहिए । कर्म करिये परंतु कर्म के फल की आशा न हो, जो भी फल मिलता है अच्छा या बुरा तो उसके साथ किसी प्रकार की आसक्ति न हो । यह करके देखिए और देखियेगा कितनी प्रसन्नता मिलती है । मोक्ष मिलेगा या नहीं मिलेगा यह तो देखा जाएगा परंतु उस वक्त देखे कि आपके चित् की हालत क्या होती है, जब आप कर्म फल के साथ किसी प्रकार की आसक्ति नहीं रखते हैं ।

आज का दिन यदि हम मनाना चाहते हैं तो व्रत रखते हैं । रात को भी विशेष भोजन बनता है, वह भगवान के चरणों में अर्पण करते हैं । तो ये सब तो करना चाहिए क्योंकि परम्परा चली आई है । परंतु वास्तव में हमें जो करना चाहिए वह है भगवान के जो गुण हैं, विशेषकर गीता में जो उपदेश है उनका खूब चिंतन करें और उन गुणों को अपनाने की कोशिश करें । और वैसे ही गुण हमारे हो जाए । भगवान ने जो यह दो मुख्य गुण बताये हैं (कर्मफल

का त्याग और समता) अगर यही मुख्य गुण व्यक्ति में आ जाए तो यानी समता हो और कर्म फल के साथ आसक्ति न हो तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमारे जीवन में एक ऐसी क्रांति आ सकती है एक ऐसी आनंद की गंगा बह सकती है आप उसका अनुमान नहीं लगा सकते । परन्तु हम करते नहीं । सब लोग जानते हैं कि इस बात को परन्तु अपने व्यवहार में लाने की कोशिश नहीं करते क्या इस समय एक भी व्यक्ति ऐसा है जो बैठा हुआ है जो कहे कि मेरे साथ अमुक बात हुई है और मैंने उसे उसी वक्त भुला दिया । हम उसको नहीं भूल पाते । परमात्मा ने हमारे चित्त को ऐसा मोम की तरह बनाया है जिसमें छाप इस कदर गहरी हो जाती है कि अगर हम भूलना भी चाहें तो नहीं भूल सकते, परन्तु प्रयास करना होगा । इसीलिए महावीर भगवान ने जैनियों के तीर्थकरों ने पहला जो धर्म रखा है कार्य रखा है, इस रास्ते पर चलने वालों को, वह है “वीर बनो” । अहिंसा का पुजारी कहता है कि वीर का मतलब है ‘दृढ़ संकल्प से’ , अपनी बुराइयों को त्यागने की कोशिश करो । यहां ढीले व्यक्ति को स्थान नहीं है । जो व्यक्ति सोचता है कि कल कर लेंगे ऐसा व्यक्ति सफल नहीं हो सकता है । गुरुदेव कहा करते थे कि महापुरुषों के या ईश्वर के गुणों को सराहना और अपनाना और वैसे ही बन जाना ये उस महान व्यक्ति की पूजा है । अगर वास्तव में आप भगवान के दर्शन करना चाहते हैं और सत्संग को फैलाना चाहते हैं तो भगवान के गुणों को अपनाए और दीन बन कर रहिये ।

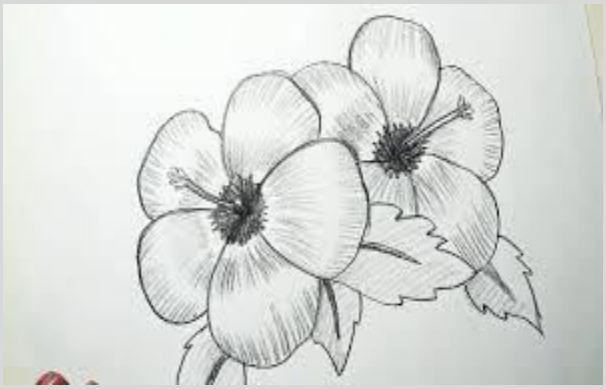

(२६)

ईश्वर सत्य स्वरूप है निर्मल है हमें भी वैसा ही होना चाहिए

वार्षिक भंडारा सिकंदराबाद, दिनाक: २५-१०-८२

सुमिरन से भीतर के क्लेश खत्म होते हैं । ये क्लेश ५ प्रकार के हैं:-- पहला क्लेश 'अज्ञान' है । 'अज्ञान' का मतलब है जो है उसे न देखना और जो नहीं है उसे देखना । जैसे कि ईश्वर जरूर है परंतु हमें विश्वास नहीं है तथा यह जो सब विनाश होगा इसको हम होने में शुमार करते हैं । दूसरा क्लेश है 'विवेक का न होना' है । यह भी अज्ञान का रुप है । तीसरा क्लेश है "जानकर भी मौत से अनजान बने हुए ।" हमारा यत्न यही रहता है कि उसको दूर रखें । यह भी अज्ञान का ही रूप है । चौथा क्लेश है 'राग' । इसके अंतर्गत लगाव संबंधी समस्त बातें आ जाती हैं । पांचवां क्लेश है 'द्वेष' ।

'नाम, सुमिरन में मधुरता होनी चाहिए । 'नाम' मधुरता है जैसा कि एक योगिनी कहती है कि मिश्री की तरह मीठा है । हमारे इस सुमिरन में रूखापन है प्रेम नहीं है । तब आनंद कहाँ है ? ईश्वर में श्रद्धा विश्वास होगा तो प्रेम जागेगा । हमारा सर्वस्व उधर लगे तब सच्चा सुमिरन कहा जाएगा ।

लोग कहते हैं चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन करते करते मुर्छित हो जाते थे । मुर्छित कहना गलत शब्द है । वे लय, एकाकार हो जाते थे । आत्मा के आयाम में पहुंच जाते थे । मन का होश नहीं रहता था । हमें भी पूजा में ऐसी ही अवस्था प्राप्त करने हेतु यत्न करना है । पूजा में भजन, साधना दोनों करनी चाहिए । इससे संकल्प विकल्प नहीं उठते है । इस हेतु कठिनाइयां आती है पर सदना कसाई की तरह सब कार्य ईश्वर की याद में करें । मन अशांत न हो । तब ऐसा आनंद प्राप्त होता है जो कभी घटता बढ़ता नहीं है ।

इस प्रकार से नाम सुमिरन की बहुत महत्ता है । नामी के साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए, यही नाम सुमिरन है । नाम उच्चारण के बाद मन का जाप शुरू होता है जो अनहद को ले जाता है । फिर ईश्वर से प्रेम होने लग जाता है । यहीं प्रेम ईश्वर से योग कराता है । यही सच्चा सुमिरन हैं । नाम व नामी को एक हो जाना है ।

साधना हेतु जितना समय निश्चित किया जावे उतने समय पूर्णरूप से बैठना चाहिए । चाहे मन लगे या न लगे । कई पत्र प्राप्त होते हैं कि मन लगता ही नहीं, कारण क्या है ? इसका कारण यह है कि हम संकल्प की विकल्पों में बह जाते हैं । मन न लगे तो उस अवधि में रोए गिडगिडाए । किसी अच्छी धार्मिक पुस्तक का अध्ययन करें ।

अब यह सुविधा दृढ़ कैसे हो ? यह सायम अर्ज करूँगा ।

सायंकालीन पप्रवचन की इस सम्मेलन को दृढ़ कैसे किया जाये:

इस सुमरन को दृढ़ कैसे किया जाये ? इस ओर प्रथम प्रयास है 'सेवा' । यह तीन प्रकार की मानी गई है । हाथ पावकी सेवा, रुपये पैसे की सेवा, एवं तीसरी सेवा अपने ईष्ट के ख्यालों को धारण कर के वितरण करना । हमारे गुरुदेव, भाइयों के आपस की सेवा देख कर बड़े प्रसन्न होते थे । जो हमसे कोई घृणा करें, हमें उनकी भी सेवा करनी है । रणक्षेत्र में गुरुगोविंद सिंह जी ने उस व्यक्ति को बुलाया जिसके लिए शिकायत आई थी कि वह दोनों पक्षों के घायलों की मरहम पट्टी कर रहा है । सबके सामने उससे पूछा गया कि क्या यह सच है ? तो वे बोले कि मुझे तो यह ख्याल ही नहीं रहता कि कौन अपना है और कौन शत्रु पक्ष का । केवल घावों पर नजर रहती है । तब गुरुदेव ने उसकी छाती से लगा लिया और तब अपना अलग ही पन्थ चलाने की इजाजत दी । इस पन्थ का नाम हुआ 'सेवा पंथी' । कन्हैया जी इसके पहले आचार्य हुए । यह सेवा पंथी संप्रदाय अब भी प्रगति पर है । कई विद्वान ज्ञानी प्रेमी संत इस रास्ते में हुए है । कई उदाहरण इतिहास में ऐसे मिलते हैं कि केवल हाथ पांव की सेवा करके ही शिष्यों ने मुक्ति का वरण किया है ।

सुमिरन की दृढ़ता हेतु दूसरा प्रयास है 'धर्म' । धर्म के अन्तर्गत नियमित जीवन हो । संध्या का समय ब्रह्म मुहर्त उत्तम हैं । चार बजे बाद सृष्टि का फैलाव बाहर का हो जाता है । और प्रयास करते रहना चाहिए कि हमारी सम्पूर्ण दिनचर्या संयमित रहे । यह सब धर्म के अंतर्गत आता है ।

"तीसरा प्रयास है सत्संग"--- एक सत्संग तो है सामान्य । दूसरे प्रकार का सत्संग है सत्यता के साथ संग । इश्वर की हुजूरी का भाव हो । गुरु का अधिक से अधिक सत्संगन करें । केवल उसके पास बैठना है । उसके साथ प्रेम होगा तो वैसे ही आप बनोगे । उसके भीतर से जो किरणें फैल रही हैं , उनसे आपको लाभ होगा । चंचलता छोड़ कर बैठे अन्य कुछ नहीं

करना है । मन शामिल रहे । हमारा मराकबा यही था मौन का । मौन से ही मैल धुल जाते हैं मौन ही आत्मा तक ले जा सकता हैं बाकी नहीं । यह भजन आदि सहायक का कार्य ही कर सकते हैं । वहां प्रवेश तो मौन से ही होगा । हम भी आदेश उपदेशों का पालन करके इस प्रेम पंथ पर चलें ।

अभी आपने राम-चरित मानस पाठ में सुना, भरत जी कह रहे हैं कि यह प्रसादी मुझे सौ कल्प के तपस्या के बाद भी नहीं मिलती । यह कृपा है जो केवल कृपा पात्र को ही मिलती है । इसे कहीं कहीं अपात्र भी ले गए हैं । इसका एक उदाहरण है, ढाका का एक धुनिया जो दुनिया जो दिन को गरीबों को खैरात बाटता था और रात को डाके डालता था । नानक देव उसके घर गए । उन्होंने प्रसाद नहीं खाया तो वह कांपा । गुरुदेव से पूछा, ऐसा पहले किसी साधु ने नहीं किया, यह क्या बात है ? वह बोले तुम्हारी कुमारी पाप की कमाई है । उसे यह घमंड था कि पाप के बाद मैं धर्म भी करता हूँ, इसलिए मुझे पाप कैसे लगेगा । आप बोले हम जाते हैं । तीन चीजें याद रखना:-

(१) गरीबों को मत सताना न सताते देखना (२) सत्य बोलना (३) नमक खाकर हराम मत होना ।

उसने योजना बनाई कि गरीबों को सताने के बजाय तो एक दिन राजा के यहाँ डालकर हमेशा आनंद से रहूंगा । तब राजकुमार का वेश धरकर राजमहल में गया है । उसे कौन रोकता । सारा कीमती खजाना बाहर निकला । सोने की एक तश्तरी में एक पदार्थ सा रखा देख कर उसे चखा, वह नमक था । तब सब कुछ छोड़कर बाहर आ गया । गरीबों को बुलाकर राजा की पुलिस ने सताया, उन्हें पीटा । यह देखकर उसने दरबार में उपस्थित होकर गुनाह कबूल किया । राजा बोला–"तू दंड से घबराता नहीं, तुझे मालूम है कि तू स्वयं न बताता तो तुझ पर कोई शक भी नहीं करता । वो बोला– "हाँ, मैं जानता हूँ कि मुझे फांसी होगी । परन्तु तुम गरीबों को मत सताओ ।" तब राजा को सारी कहानी बताई राजा भी सुनकर प्रभावित हुआ । वह धुनिया को केवल क्षमा ही नहीं किया अपितु वजीर भी नियुक्त कर लिया । जो बाद में साधु हुआ । आज भी उसके नाम से ढाका में धर्मशालाएं आदि है । यह कृपा है । फिर भी हमें अधिक से अधिक अधिकारी बनने का साधन करना चाहिए ।

अब सब प्रसाद चढ़ाने की प्रार्थना करें । अभी अभी मेरे मन में विचार आया कि ये बचे हुए अकेले आदि हमने प्रसाद में रखें हैं इससे हमारी श्रद्धा की कमी जाहिर होती है ।

क्या यही सम्मान है हमारे बुजुर्गों का ? हालांकि वे तो भाव के भूखे हैं । खर्च भी अधिक होता है इसलिए पिछले दो चार साल से यह मैं कह देता हूँ पर कुछ ताजा मिठाई भी अवश्य रखनी चाहिए । आप मुझे क्षमा करेंगे ।

दि० २५-१०-८२ दोपहर

अपनी बडाई व दूसरों की निंदा सुनना हम सब पसंद करते हैं । समाचार पत्रों में देखिये यही तो होता है । हमें यह सब नहीं करना है । किसी के प्रति आलोचना न करें, किसी की प्रतिक्रिया ना देखें । दूसरे को छोटा बनाने का यत्न न करें । अगर आपके बर्तन में कोई चीज नहीं है तो उडेल कहाँ से हो रहे हो । पहले अपने भीतर में जमा की, तभी वितरित कर रहे हो । यह वैज्ञानिक चीज है । यह जीवन की गिरी हुई स्थिति है । इससे छुटकारा पाने हेतु हमें अभ्यास करना चाहिए । किसी को छोटा मत समझो । यह ईश्वर का कैसा गुणगान हुआ कि वह छोटा है बुरा है । सोचे कि मैं हीं नीच हूँ । भूल कर भी किसी की बुराई न करें । पिछले समय में राजाओं के दरबार में कवि हुआ करते थे, उनकी बड़ाई यशगान किया करते थे, कबीर साहब इसी के अनुपात में निंदक को नजदीक रखने की बात कह रहे हैं कि 'निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय' । हम सब ईश्वर की समीपता हेतु एकत्र हुए हैं । किसी की बुराई किसी का शोषण किसी की प्रतिक्रिया न करें । हमारे यहां का यही तप है कि लोग बुरा भला कहें हम बर्दाश्त करें । लोग आपकी बुराई करते हैं यह अच्छा है, आप दे खें कि आत्मा के कितने नजदीक हैं । तुम नेकी करो । "तू तू करता हैतू भया, मुझमें रही न मैं" । राम में राम नजर आते हैं परंतु ररावण में भी राम नजर आएंगे तब प्रगति है । हमेशा अपनी बुराई भी मत करो । हफ्ते में एक बार स्व-निरिक्षण करना चाहिए । अपनी साधना सही बने । संसार के प्रति बुराई का व्यवहार, ध्यान में गुरुमहाराज के सामने रखना चाहिए । फिर भी अगर ठीक नहीं हो तो इष्टदेव को कह देना चाहिए । तो वे कहने से भी हल्की हो जाती फिर छुट जाती है । इन बातों की समझ में आ रही है शुक्र है, परंतु ये बातें व्यवहार में आनी चाहिए ।

दि० २६-१०-८२ प्रात:

अभी पंजाबी में भजन पढ़ा गया जिसमें अंत में यह निवेदन किया गया कि यह रक्त की मटकी कहीं आप तोड़ न दें । शिष्य में यह रहता हीं है कि उसे पूर्ण विश्वास नहीं हो पाता कि मुझ पर अपार कृपा है । यह जरूरी है इससे अहंकार नहीं रहता है है । हर किसी की इच्छा रहती है कि वह आचार्य बने । यह बुरी बात नहीं है पर यह कुछ ही लोगों के लिए होता है । इन लोगों में एक गुण संवेदना का होता है । ये लोग हजम करके वितरण करते हैं । संत सभी बन सकते हैं आत्मा का साक्षातकार कर सकते हैं । जिन्हें इजाजत नहीं है वे कम नहीं है उन्हें इर्ष्या नहीं अपनानी है, सही उपयोग जरूरी है ।

जैसे बहन पंजाबी में भजन पढ़ रही थी, अभ्यासी के मन में कुछ भय रहता है अगर यह भय संसार का है तो यह बुरा है । अध्यात्मिक भय बना रहे तो अच्छा है । साधना में खासकर भक्ति में, दो बातें आवश्यक है । एक प्रीतम से प्रेम, दूसरा भय । साधक की हालत पतिव्रता स्त्री की सी होनी चाहिए । भय रहना चाहिए । स्त्रियां महान है । जितनी सेवाएं ये कर सकती है उतनी सेवा हम नहीं कर सकते । प्रेम में भय हो । यहाँ इष्टदेव, पहले गुरु बाद में उनके द्वारा नियुक्त किए हुए आचार्य हैं । हम उनकी आत्मा की पूजा करते हैं । यह फुलवारी उन्हीं की है । किसी पर कोप नहीं हो । जो ऐसा करता है वह टटोले अपने आपको । अधिक साधना जरूरी नहीं है । सच्चा प्रेम होना जरूरी है । हम तकनीकी साधना करते हैं ज्ञान की बातें करते हैं परन्तु कोरे हैं । लालाजी (दादागुरु) के एवं गुरुदेव (महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज) को एक भी व्यक्ति अपने जीवन में ऐसा नहीं लगा था जो उनकी आशाओं के अनुरूप हो । यह उनकी वसीयत है । हमें उनकी इस वसीयत के अनुसार बनना है । कठोरता के साथ बोला गया सत्य भी अहंकार है । अतः अब हमें यत्न करना है भरसक कोशिश करनी है । वे हमें देख रहे हैं । जब तक उनकी खुशी नहीं पा सकती तब तक हम अधम उद्धार भी नहीं पा सकते । हमें अपनी गलतियों को देखकर सुधरना है । सरलता दीनता आनी चाहिए । अंदर में गुण नहीं हैं तो सच्चे हृदय से प्रार्थना नहीं होगी । सर्वस्व न्योछावर करके तपस्वी बनें । इन दिनों जो नवरात्रों का त्योहार है चलता है इनमें अहंकार रूपी रावण को समाप्त किया जाता है उसका बलिदान दिया जाता है तब कन्या को पूजा जाता है कन्या यानि शुद्ध आत्मा ।

दि० २७-१०-८२

साधक का मांगना अनुचित नहीं है । उसे मांगते रहना चाहिए । इसी तरह से साधना के गुण नहीं अपनाने से भक्ति सही नहीं बनेगी । आज विजयादशमी है । रावण में सब गुण थे । एक हीं अवगुण था । केवल एक अहंकार के कारण उसका यह हाल हुआ । अहंकार के रहते व्यक्ति का जीवन कभी शांत नहीं होगा । इससे मेरा-तेरा पन फैलता है । मेरा-तेरापन है तो फिर शांति कहाँ ? तो इसे हटाना है । माँ धरती के धैर्य धारण करना है । इसी कारण से यह धरती माता पूजी जाती है । गुरुवाणी में यही तो आया है कि सब अपने आपको साधारण समझे पर कोई भी अपने आपको साधारण नहीं मानता । विश्वामित्र जी का अहंकार वशिष्ठ जी के सामने कैसा लगा था ? भृगु जी का अहंकार कैसे गया था ? सब संसार का पालक है पर भृगु जी की लात बर्दाश्त करता है । शक्ति है पर प्रयोग नहीं कर रहे । हमें भी शक्ति को पाकर अपना उद्धार तो करना ही है संसार का भी करना है ।

पांचवें गुरु (अर्जुन देव जी) को गर्म लोहे के तवे प्रन्त्पाया जा रहा था । उनके धार्मिक मामलों में राय देने वाले मियां मीर संत गुरुदेव के पास आये हैं । बोले आप हुकुम करे तो मैं जहाँगीर की सल्तनत का तख्ता उल्ट दूँ । पर गुरुदेव बोले "तेरा भाणा मीठा लागे, नाम पदारथ नानका" । ऐ ! मियां मीर , मेरे लिए दुआ करो कि मैं कहीं ईश्वर प्रेम से वंचित न हो जाऊं । ऐसे उदाहरण सुनकर हमें केवल आनन्द में हीं नहीं आना है । हमे यह भी सोचना है कि हम कहाँ हैं । महापुरुषों का जीवन हमारा दर्शन है । प्रश्न पत्र है । चैतन्य महा प्रभु सभी को यही उत्तर देते थे कि आप ठीक कहते है । महान वैज्ञानिक दार्शनिक आइन्स्टीन भी यही कहते थे कि "मैं ज्ञान के सागर के तट पर बैठा कंकडों से खेल रहा हूँ ।" हम थोड़ी सी प्रगति पर हीं अभिमान कर बैठते हैं । यह गलत है । जो बाँट कर खाए , वह भक्त है । कबीर का लड़का रिश्वत लेने गया है , किस लिए ? साधुओं के लिए । बुद्धि , शारीरिक बल व अन्य बलों से कोई भक्त नहीं बनता । हारे को हरिनाम । दान आदि के साथ अगर अहंकार है तो हमारे ईश्वर उसको स्वीकार नहीं करते । हमारे शाश्त्रों में सब कुछ मिलता है परन्तु दीनता जितनी संतो ने अपनाई है वह अन्य किसी ने नहीं । अपनी गति को ईश्वर की गति में मिलाना है । काम निकल जाने के बाद आँख फेर जाना संतमत में शोषणक है । सूफी संत व संतमत एक हीं है ।

कोई अंतर नहीं है । नानकदेव ने सब पद्धतियों का वर्णन करके लिखा है कि इनसे मोक्ष नहीं मिलटी तो कैसे होगी ? प्रश्न करते है फिर स्वयं हिन् उत्तर देते हैं । यह दिवार जो बनी हुई हमारे और ईश्वर के बीच की , यह उसकी हुजूरी में चलने से टूटेगी । इसके दो पद हीं सोपान हैं । ईश्वर के आज्ञा को समझना है । ईश्वर के आदेश क्या हैं ? उन्हें भी समझना है । दूसरा पद यह है कि उस आज्ञा का पालन करना है । इसके बाद हीं गुरुपद या शिखरता सम्भव है । तो सामान्य व्यक्ति करें क्या ? जब तक यह अनुभव न हो तब तक हमारा सारा कार्य ईश्वर की पूजा लिए हुए हो । नानक साहब कहते हैं, जो ईश्वर का हुकुम समझता है वह अहंकारी नहीं होगा ।

दो सन्यासी जा रहे थे चलते चलते एक सन्यासी ने दुसरे पर अचानक जूता मारा । दूसरा रोया । पहले ने पूछा, “रो क्यों रहे हो ?” तो दूसरा बोला की तुम आग के कपड़े पहने हुए है,साधू है फिर तूने यह क्या कर दिया ? इस बात पर रो रहा हूँ । तो पहला बिला तू कैसा साधू है ? तुझे अभी तक यह सब ज्ञान है ? मैंने तो ईश्वर की प्रेरणा को अपनाकर तुझे जूता मारा की देखें तेरा अहंकार कैसा है ?

अहंकार के रहते बनावटी दीनता हीं आ सकती है । इसलिए कबीर जी निंदक को प्रोत्साहन करने को कहते है । निंदक हमार सबसे बड़ा अवगुण, अहंकार बताते हैं । दुनिया तो ऐसे करेगी हीं । इस हेतु तैयार रहें । कभी शिकायत न करें । अपनी तरफ से नेकी हीं नेकी करें । स्वामी राम कृष्ण की कथाओं में आता है कि एक बिच्छू नदी में बहता जा रहा था । वहीं एक साधु नहा रहे थे । उन्होंने दया से द्रवित कर उसे उठा कर हथेली पर रख लिया । उसने स्वभाव वश उन्हें काट लिया । पीड़ा से वह बिच्छु उनके हाथों से छूटकर फिर पानी में गिर गया । संत ने दया न छोड़ी और उसे पुनः उठा कर अपने हाथ पर रख लिया । दोनों अपना अपना अपना स्वभाव दोहराते रहें । जब कई बार ऐसा हुआ तो पास में स्नान कर रहे हैं लोगों ने संत से कहा, यह तो दुष्ट है । आप इसे क्यों बचाते हैं ? वे बोले कि यह अज्ञानी है, बुद्धि नहीं है । जिसको कोई विवेक बुद्धि नहीं, वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता । यह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तो मैं कैसे छोड़ूं ?

निराशा क्रोध जलन आदि जो उत्पन्न होती है उन्हें नहीं अपनाना है । फरीद जी भी यही कहते हैं कि “अपने व्यवहार से कोई बात ऐसी न करें जिससे स्वयं आप, सत्संग, गुरु या ईश्वर बदनाम हो” । हमारा यही तब है कि हम बुराइयों को देखें वह छोड़े । संसार हमारी

बुराई करता है तो उसके बदले केवल भला करें । ईश्वर सत् स्वरूप है निर्मल है । हमें भी वैसा ही होना है । सम अवस्था व जडता भी अलग अलग है । समता में करुणा दया सब गुण होने चाहिए । यह सब तो प्रेम और दीनता से ही संभव है । अतः संतमत में समता से अधिक जोर प्रेम व दीनता पर दिया गया है ।

(दि० २७-१०-८२, को दुआ के समय)

आज वार्षिक भंडारे का अंतिम दिन है । इस महान उत्सव पर हम अपनी दुर्गुण देखें वह छोड़ने का यत्न करें । इन दिनों बुजुर्गों की कृपा विशेष रूप से होती है । उसे धारण करनी चाहिए । अपनी चिंत को जितना निर्मल कर सके, करें । उनकी लीला का गुणगान करें परमात्माकी तरह संत भी दयानिधान हैं । परम पूजनीय महात्मा श्री कृष्ण लाल जी डॉक्टरी करते थे । गरीब एवं लाइलाज मरीजों के स्वार्थ १५ -१५ दिन तक बाहर रह जाते थे । वहां बरामदों में धूप में पड़े रहते थे । उनककी हम कई बार सेवा करने की सोचते कई बार अर्ज़ करते कि पानी हम भर लेते हैं पर उनके शब्दों में शक्ति ही ऐसी होती थी कि हम दोबारा बोलने की हिम्मत नहीं कर पाते थे । यहां तक कि अपना जीवन भी देना पड़ता तो वे तैयार रहते थे । मेरी पहली धर्म-पत्नी सख्त बीमार थी वे भी उससे पुत्रीवत बहुत प्रेम करते थे तथा वह भी आपसे पितृवत बहुत प्रेम करती थी । अपना शेष जीवन उनके लिए अर्पित कर ईश्वर से दुआ की । मेरी आधी आयु चढ़ा कर दुआ की । पांच सौ रुपयों का दान भी करने को कहा । फिर आकर बोले, “सरदार जी, मेरी दुआ शायद कबूल नहीं होगी” । फिर दो ढाई घंटे तक उनके शरीर शांत होने तक अपनी गोद में उनका सिर लिए बैठे रहे ।

पूज्य भाई साहब सरदार करतार सिंह जी की पहली धर्मपत्नी (जिनका उल्लेख भाई साहब ने यहाँ किया है) का नाम से श्रीमती करतार कौर था । वे एक महान पति परायण, ईश्वर भक्त और साध्वी महिला थी । उनके इन सद्गुणों के कारण पूज्य गुरुदेव महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज की उन पर विशेष कृपा थी । जब वह अत्यधिक बीमार हुई तो शल्य चिकित्सा के लिए उन्हें दिल्ली के सर गंगाराम अस्पताल में भर्ती कराया गया था । ऑपरेशन के बाद उन्हें स्वास्थ्य लाभ न हो कर दशा और बिगड़ गई । उपरोक्त घटना में पूज्य भाई साहब ने उसी का हवाला दिया है ।

पूज्य गुरुदेव अस्पताल में बरांडे में, धरती पर ही, रात को लेटे रहते थे और दिन में बाहर की घास पर या बरांडे में, अपना समय भाभी जी के स्वस्थ होने तथा दीर्घायु होने की भगवान से प्रार्थना करने में बिताते थे ---यह मैंने स्वयं देखा है ।

भाभी जी के शरीरान्त के बाद ही चिकित्सालय के प्रांगण में गुरुदेव ने मुझसे कहा था कि भाभी जी की आत्मा अंगूठे के बराबर दीपक की लौ की तरह दसवें द्वार में जाकर रुक जाती थी और फिर कुछ नीचे आ जाती थी । उन्हें होश नहीं था । उनकी आत्मा को दुविधा में देखकर गुरुदेव ने अपनी आत्मिक शक्ति से उसे दसवें द्वार से ऊपर निकाल दिया था और तभी शरीर प्राण रहित हो गया था । उस दिन सन १९५७ का गुरु नानक जन्म दिवस था ।

पूज्य भाभी जी गुरुदेव से दीक्षित नहीं थी । उन्होंने नाम राधास्वामी संप्रदाय के महापुरुष से लिया था । उनकी साधना बहुत ऊँची थी । और जीवन सेवा से ओतप्रोत था । डेढ़-डेढ़ दो-दो घंटे की समाधि लग जाती थी । संत यों हीं किसी पर द्रवित नहीं होता वह उसके गुणों पर रीझता है और यही इस घटना का सारांश है । ----------महेश चंद्र ।

आप कहते थे कि साधक बेशक कुछ भी नहीं करें पर उसमें लचक होनी चाहिए । मुलायमीयत होनी चाहिए । आप लालाजी के अत्यधिक प्रिय थे । हमारा । मराकबा यही है कि मौन धारण कर गुरुदेव का सत्संग करता रहे । बस, यही काफी है । हमने दस साल तक कुछ भी साधन नहीं किया । न हीं कुछ पूछा, न ही उन्होंने बताया ।

हम सब को यहाँ से उनका प्रेम लेकर जाना है, फैलाना है ।

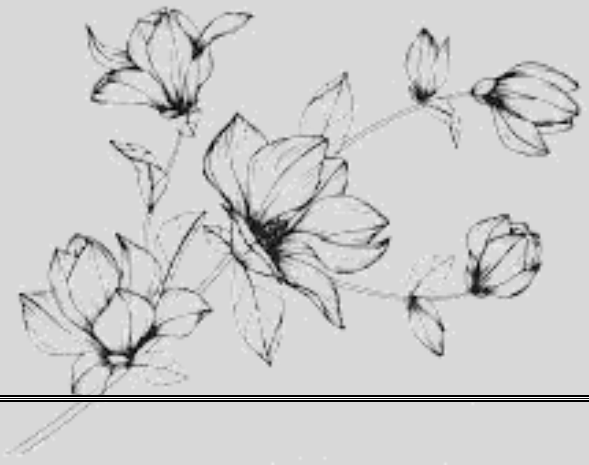

(२७)

सेवा और प्रसन्नता को अपनाएं

गाजियाबाद, दि० ८-१-८३ (सायम)

[आज श्री गोपाल कृष्ण भटनागर जी (सुपुत्र परम संत महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज) के निवास पर उनकी पुत्री के २४-१-१९८३ को होने वाले विवाह के उपलक्ष्य में सत्संग का आयोजन था । इस उत्सव पर जो भजन / प्रवचन हुए उन्हें टेप कर लिया गया था जो नीचे दिया जाता है:---]

भजन गावो री दुल्हनी मंगल चारा ।
मोरे घर आए राजा राम भर तारा ॥
तन निर्मल मन पुनरप करिहौं, पांचो तत्व बराती ।
राम राय सौं भांवर लैहों, आत्म ते रंग राती ॥
नाभि कंवल में बेदी रच ले , ब्रह्मज्ञान विचारा ।
राम राय सो दूल्हो पायो, अस बड़ भाग हमारा ॥
सुर नर मुनि सब कौतुक आए तेंतीस उजाना ।
कहैं कबीर मोहे ब्याह चले हैं, पुरुष एक भगवाना ॥

प्रवचन हमारी संस्कृति में अब भी जान है । हमारे यहां जितने भी शुभकर्मों ते विवाह आदि, त्योहार आदि, ये सब प्रभु प्राप्ति की ओर संकेत करते हैं । कबीर साहब इस वाणी में फरमा रहे हैं कि उनकी आत्मा स्त्री रूप, परमात्मा पति रूप, का जब विवाह हुआ, योग हुआ, मिलन हुआ, दर्शन हुए तो कहते हैं कि खूब मंगल गाओ, खुशियां मनाओ । विवाह के समय भी जो पंडित जी विवाह कराते हैं । तो लड़की को शिक्षा देते हैं कि उसे लक्ष्मी बनना है अर्थात अपनी आत्मा का साक्षात्कार करना है । लड़के से कहते हैं कि तुम्हें विष्णु भगवान बनना है परमात्मा का रूप बना है । यदि आत्मा परमात्मा की शादी करते हैं और अग्नि को साक्षी करके सौगंध लेते हैं । परंतु उस समय सबको नींद आई होती है पंडित जी की बात को कोई सुनता ही नहीं ।

इसी तरह संत-मत में, सिख-मत में भी जब विवाह होता है तो यही उपदेश दिया जाता है कि ये विवाद हो रहा है एक प्रकार से गुड़ियों का खेल है । वास्विकता उस खेल में वहीं है कि व्यक्ति ने अपनी आत्मा को परमात्मा में लय करना है । वही सच्चा विवाह है और उसी समय सच्ची खुशी होती है । शुक्र है कि यह भावना प्रत्येक भारतवासी के मन में बसी रहती है ।

कुछ दिन पश्चात प्रिय गोपाल जी की पुत्री की शादी है । आप गुरुदेव की सन्तान हैं, हमारे लिए गुरु रूप ही है । इनके प्रति और भाभी जी के प्रति हमारी शुभकामनाएं हैं कि यह पवित्र विवाह बड़ी कुशलता और सुगमता से संपन्न हो । हमारी सब की शुभकामनाएं हैं परन्तु हमें खुशी होगी यदि यह परिवार विवाह के वास्तविक अर्थ को समझेंगे । गुरुदेव के जीवन में न तो इन्होंने इधर विशेष ध्यान दिया और न हम लोगों ने दिया । यह वस्तविकता है कि हम लोगों ने गुरु को, जो ईश्वर का रूप है उसको समझा ही नहीं । हमारी इस मूर्खता के लिए उन्होंने फरमाया भी था कि मुझे खेद है कि मैं जा रहा हूँ लेकिन मेरी संतान में से या भाइयों में से कोई भी ऐसा व्यक्ति आगे नहीं बढ़ा, जिस प्रकार वे हमें बनाना चाहते थे । ये किसी का दोष नहीं । ये सब हमारे पिछले संस्कारों का दोष है--- माया को दोष हम इसलिए देते हैं कि हम कमजोर है । हमें जितना पुरुषार्थ और परिश्रम करना चाहिए था, जितना उनसे प्रेम करना चाहिए था । जितनी उनकी सेवा करनी चाहिए थी हमने नहीं की ।

प्रत्येक व्यक्ति साधक के रूप में, कबीर साहब की, गुरु नानक देव की वाणी देखें--- ------- सबने एक कुंवारी कन्या के रुपये अपने आपको प्रभु के चरणों में समर्पित करके उन्हें प्राप्त किया है । उनकी वाणी पढ़िए---- उन्होंने ईश्वर को संबोधित किया है कि 'हे मेरे प्रीतम, मेरी बहुत सी बहने हैं, सहेलियाँ हैं अर्थात गोपियां हैं, साधक के लिए गुरु मुख हैं, वे काफी आगे बढ़े हुए हैं और बड़ी कुशलता से अपना जीवन व्यतीत करते हैं और मैं ही एक ऐसी दुहागेन हूँ, आपसे बिछुड़ी हुई हूँ , जो दुखी हूँ । ये हमारे प्रति कहा है । हम सब उसी श्रेणी में हैं दुहागीन है अपने सच्चे पति परमेश्वर से बिछडे हुए हैं । यही कारण है कि हमारे भीतर में दुःख रहता है । कभी तृप्ति नहीं है, कभी शांति नहीं है । हम सब ने अपने सच्चे पति परमेश्वर के साथ विवाह करना हैतो उस विवाह के योग्य में बनना है । चाहे तो हम भक्ति की साधना करें और चाहे ज्ञान की साधना करें--- **भक्ति की साधना में भगवान के गुणों को सराहना होगा । वो किस प्रकार सराहा जाता है ? महापुरुषों की वाणी लेकर उसको बार बार कीर्तन करना चाहिए । उसके गुणों को बार बार याद करें और बार बार सराहें । जब तक उन गुणों को बार बार सराहेंगे नहीं यानि अपने व्यवहार में नहीं उतारेंगे, तब तक वह हमारे भीतर में नहीं बसेंगे नहीं । और जब तक हमारे भीतर वे गुण बसेंगे नहीं तब तक हम उस प्रभु के**

प्रेम के अधिकारी नहीं बनेंगे । प्रभु के चरणों में कैसे पहुंचेंगे ? हम सब गोपियों का रूप है सब रास्ते पर चल रहे हैं हमारे सच्चे पति भगवान हमें तभी अपनाएंगे जब हम उस योग्य हो जायेंगे ।

ज्ञान के रास्ते पर चलने वाले को भी यही साधना करनी होगी । भक्ति साधना और ज्ञान साधना में कोई विशेष अंतर नहीं है । भक्त भगवान को सराहता रहता है और उसी सराहना करते रहने से उसके भीतर भगवान के गुण बस जाते हैं । ज्ञानी अष्टांग योग करता है और जब चित्त एकाग्र हो जाता है तो संसार से उदासीन हो जाता है । वो धारणा करता है भगवान की । धारणा करने का मतलब यही है कि उसमें वही भाव है जो भक्त द्वारा भगवाना के गुणों को सराहने में है । ज्ञानी तकलीफ से साधना करता है, भक्त प्रेम से, अराधना से, गुणगान से, अर्चना करते हुए उसके रूप का ध्यान करता है । ज्ञानी की धारणा ध्यान रूप बन जाती है, वही ध्यान समाधि में बदल जाता है, और उसको सराहता हुआ–'तू तू करता तू भया' --वही रूप बन जाता है । हमने अपने आप को जिनके चरणों में बेचा है (गुरु धारण किया है) कोशिश करे कि उसकी सेवा करें । उसका सम्मान करें । उसके साथ अगर मगर ना करें । इतना तो करें । हमारे यहां यही रास्ता है, प्रेम का । वो भी नहीं करते, कुछ और करने का क्या मतलव है ? उसके हृदय में बसाना, उसके गुणों को हृदय में अंकित करना है । उसकी सेवा क्या है ? वह क्या चाहता है ? आपन खुश रहें, प्रसन्न रहे, आनंदमय रहें । यह कैसे हो ? वो कहता है कि शास्त्रों अनुसरण करें । धर्म का अनुसरण करें, अच्छे गुणों को अपनाएं । उसके उपदेश में यही बातें होती हैं । वो अपने शरीर की पूजा नहीं कराता, अपनी पूजा नहीं कराता, अपनी सेवा नहीं कराता । केवल यह चाहता है कि आप किसी प्रकार खुश रहें । आपका जीवन आनंदमय हो । कितना भी दुख हो किन्तु आपके अंदर में सुख हीं सुख हो इसके लिए वो कुछ बातें बताता है जो कोई नई नहीं है बल्कि जो हमारे शास्त्रों में हैं उन्हीं को दोहराता है और अपने जीवन में व्यवहार द्वारा आपके ऊपर उनकी छाप डालने की कोशिश करता है । **हाथ पांव की सेवा मामूली सेवा है, पैसे की सेवा तुच्छ सेवा है । सर्वोत्तम सेवा यह है कि गुरु के आदेशों और उपदेशों का पालन करें । उसको करना बड़ा सरल हैं क्योंकि केवल उसके उपदेशों और आदेशों का पालन करना है ।** वो कोई उपदेश और आदेश इस प्रकार के नहीं देता जिसको आप मान न सके । केवल यही उपदेश देता है कि सदाचार को अपनाए । बिना सदाचार सद्गुणों और सद्व्यवहार के किसी को आंतरिक प्रसन्नता नहीं मिलती । यही वो बार बार कहता है । जो साधक गुरु की सेवा करते हैं वो धीरे धीरे गुरु रूप हो जाते हैं । यही उनका योग है यही उनका विवाह है और यही जीवन का लक्ष्य है । यह बड़ा सरल है परंतु जितना सरल है उतना ही हम दूर रहते हैं । कोई हमें कठिन बातें बता दें कि सुबह से लेकर रात तक

खड़े रहो, हठ योग करो या अन्य किसी प्रकार की बातें बता दें, तो वे अच्छी लगती है परंतु सरल उपदेशों को हम सुनने के लिए तैयार नहीं है ।

कोशिश करें । यह जीवन बार बार नहीं मिलता । इस जीवन में ही गुरुदेव को बताए हुए रास्ते को अपनाएं । संक्षिप्त में जैसा मैंने आपसे कहा इस रास्ते में कोई कठिनाई नहीं है । धर्म का पालन करना है, किसी से द्वेष नहीं करना है । यदि हो सके तो सबकी सेवा करें, कितना आसान है उनका उपदेश । पहले अपनी सेवा करो । इस सेवा में परिवार की सेवा भी आ जाती है । परिवार की सेवा करने के पश्चात यदि आपके पास कुछ बच जाता है तो अपने संबंधियों की सेवा करो, उसके बाद अपने रिश्तेदारों की, फिर अपने देश की, विदेश की । इसमें क्या कठिनाई है ? परिवार में रहकर योग्यता से कुशलता से जीवन व्यतीत करे । पति पत्नी का आपस में प्रेम, माँ बाप का बच्चों के प्रति स्नेहयुक्त सेवा का भाव हो, बच्चों को माता पिता के प्रति श्रद्धा सहित सेवा का भाव हो । कौन सी बुरी बात है जो गुरुदेव ने बताई है । वो अपनी सेवा नहीं चाह रहे हैं, परिवार में कुशलता का जीवन हो, भाइयों में राम लक्ष्मण जैसा प्रेम हो । तत्पश्चात अपने गांव के, अपने शहर के, अपने देश के, विदेश के लोगों की सेवा करने का अवसर प्राप्त करें । अपनी सेवा करने में क्या आपत्ति या संकोच है-- अपने आपको खुश रखे । अपने आंतरिक प्रसन्नता के बाद ही गुरु की प्रसन्नता या परमात्मा की प्रसन्नता प्राप्त होती है । प्रसन्नता के बाद ही मन स्थिर होता है । आपके मन में राग और द्वेष की भावना हो और आप चाहे कि मन स्थिर हो जाए, ये कभी नहीं हो सकता और जब तक मन स्थिर नहीं होगा तब तक किसी भी प्राणी को ईश्वरीय आनंद की अनुभूति नहीं हो सकती है । आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता है, गुरु की वास्तविक दर्शन नहीं हो सकता । आत्मा का परमात्मा से योग नहीं हो सकता ।

कितना सरल रास्ता है कि प्रसन्नता को अपनाइए । पहले स्वयं में, फिर परिवार में, प्रसन्नता हो कितनी आसान बात है यह ? परन्तु हम यह करते नहीं हैं समझते नहीं है । **कोशिश करिये कि थोड़ी बहुत ईश्वर की या गुरु की याद हर समय बनी रहे । उनका जीवन हमारे आखों के सामने होना चाहिए । उनकी रहनी सहनी हमारे अंतर में अंकित होनी चाहिए ।** तस्वीर का ध्यान स्थूल है इसलिए तस्वीर का ध्यान नहीं बताया जाता है । वास्तविक ध्यान यह है कि उनका जीवन, उनके गुण, उन का आत्म प्रकाश हमारे भीतर में बस जाए, हमारे जीवन का रूप बन जाए । किसी तकनीक से साधना नहीं करनी है हमें वैसा बनना है । बगला मछली के इंतजार में बैठ जाता है उसका मन खूब लगता है तो क्या बगला हंस बन जाता है, कभी नहीं । इसी तरह भले ही हम अपने मन को एकाग्र करने की कोशिश करें परंतु यदि हमारे

भीतर में प्रभु के, गुरु के आत्मा के गुण प्रकट नहीं होते तो हमारी ऐसी साधना बगला साधना है यानि जड़ समाधि है । इसका कोई लाभ नहीं है । सब महापुरुषों ने कहा कि बिना सद्‌गुणों के अपनाए हुए ईश्वर भक्ति या इश्वर ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है । और बिना सच्ची भक्ति के या सच्चे ज्ञान के ईश्वर के दर्शन नहीं होते । सच्चा सुख, सच्चा आनंद इसी में है कि हम प्रभु के गुणों को अपनाएं । उनकी सेवा यही है । गुरुदेव ने भी फरमाया है की ईश्वर की पूजा क्या है ? सब के गुणों को सराहना अपनाना एवं जीवन में उतारना । ईश्वर दर्शन क्या है ? जो ईश्वर के या गुरु के या हमारे ईष्ट देव के गुण हैं वे ही हमारे हो जाए । ये ईश्वर दर्शन है । किसी तस्वीर को देखना, किसी महापुरुष के शरीर को देख लेना, किसी मूर्ति को देख लेना , ये सच्चे दर्शन नहीं है । दर्शन का मतलबयह है कि परमात्मा के जिस रूप की हम पूजा करते हैं उस महान हस्ती के गुण हमारे रोम रोम में बस जाएं, सहज अवस्था हो जाये । वे ही गुण हम में आ जाए । यही दर्शन है ?

कौन नहीं चाहेगा कि उसके भीतर में शांति हो आनंद हो, सुख हो । ये तभी हो सकते हैं यदि हम सद्‌गुणों को अपनाए, सद्‌विचारों को अपनाए, इन्हें हम अपने व्यवहार में विकसित करें । यदि साधना तो करते हैं और व्यवहार में लड़ते झगड़ते हैं तो साधना कहा रही ? वास्तविक साधना तो हमारा व्यवहार है । ये सवेरे शाम जो पूजा पर हम बैठते हैं ये शक्ति पूजा है, माँ की पूजा है । यदि हमारी दिनचर्या कुशलमय नहीं है, हमारे व्यवहार से दूसरे को सुख नहीं मिलता, उस व्यवहार से हमें ही सुख नहीं मिलता तो हम साधना किसलिए करते हैं ? अपने आपको धोखा दे रहे हैं । तभी लोग हमारे ऊपर उंगलियां उठाते हैं, ये कैसी साधना करते हैं, संत बने हुए इसका व्यवहार कैसा है ? उनका कहना ठीक है । कबीर साहब ने भी कहा है–"निंदक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाए" जो हमारी निंदा करें उसको अपने आंगन में बिठाओ । वो व्यक्ति हमारा मित्र है जो हमारे अवगुणों को जताता है । उसकी बातों का कभी बुरा नहीं मनाना चाहिए । जो इस रास्ते पर चल रहे हैं उनसे कह रहे हैं । दूसरों से तो लड़ाई-झगड़ा हो जाता है । परंतु जो साधक हैं जो सच्चा जिज्ञासु है उसको चाहिए कि यदि उसकी कोई निंदा करता है (निंदा का मतलब है कोई बुराई बतलाता है) तो गुरुदेव का कहना है कि यदि इस बुराई में इस निंदा में आप देखते हैं कि वो निंदक ठीक कह रहा है तो कोशिश करनी चाहिए कि हम अपनी बुराइयों को दूर करें और यदि वह अकारण ही हमारी निंदा करता है तो प्रभु से प्रार्थना करें कि हे प्रभु ! इस पर कृपा करों । बुरा कभी नहीं मनाना चाहिए । गुरुदेव (महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज) का भी यही कहना है कि **हमेशा अपने आपको दोषी समझो । परिवार में कोई भी सदस्य गलती करता हो तो परिवार का जो मुख्य हैं उसको यही सोचना चाहिए कि ये सब मेरे ही दोष के कारण है । यदि कोई बच्चा गलती करता है तो**

पिता की कमजोरी से बच्चा गलती करता है पिता को सोचना चाहिए कि मुझसे क्या त्रुटी हुई है जो बच्चे ने की है । बच्चा क्यों नहीं पढता क्यों बाजारों में सड़कों पर घूमता फिरता है ? क्यों जवाब देता है ? इसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेनी चाहिए । बच्चों को प्रभावित हम अपने जीवन से कर सकते हैं । परिवार में हम अपनी छाप लगा सकते हैं अपने व्यवहार से । इसी तरह संसार में भी हम दूसरों को प्रभावित कर सकते हैं अपने व्यवहार से । बातों को सुनने के लिए कोई तैयार नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति आपके व्यवहार को देखता है । यदि आपका व्यवहार आदर्शमय होगा तो वह आपके पीछे पीछे चलेगा ।

तो हम अपने व्यवहार को शुद्ध करें, पवित्र करें । अपने व्यवहार को ही पूजा का रूप बना दें और व्यवहार द्वारा ही अपने परिवार को कुशलमय बनाए मंगलमय बनाये संसार को भी मंगलमय बनए और इस प्रसन्नता द्वारा, कुशलता द्वारा प्रभु के चरणों में पहुंचने का प्रयास करे ।

गुरुदेव आप सब को शक्ति दे कि आप उनके बताए हुए रास्ते पर चल सके

भांव धतूरा और सुरा, उतर जा परभात ॥
नामु खुमारी नानका चढ़ी रहत दिन रात ।
ब्द्बख्तों की तेरे पै तकदीर बनाई जाती है ॥
जो मौत का फंदा काट सके शमशीर दिखाई जाती है ।

प्रश्नोत्तर

राम संदेश, अप्रैल / ८३

(परम संत डॉक्टर करतार सिंह जी की सेवा में दि० ९-१-८३ को दिल्ली में रखे गए प्रश्न व उत्तर)

प्रश्न: परिवार के सदस्यों के व्यवहार के कारण कभी कभी मन विचलित हो जाता है ।

उत्तर: हमें अपने आपको परिवार का सेवक समझना चाहिए, मालिक नहीं ।

परिवार के किसी भी सदस्य की गलती में अपने स्वयं की गलती समझे । किसी से कुछ न कहे मन ही मन परमात्मासे दुआ करें । बात कुछ अधिक अनुचित हो तो दिखावे की कठोरता लावें । मन विचलित न हो । वह हृदय पर अंकित न हो जाए । आपका व्यवहार इतना आदर्श उतना मधुर हो कि घर वाले आपकी बात स्वत: मान लें ।

अगर आपको गुस्सा है तो तुरंत न बोले आधे मिनट को आंख बंद कर ले फिर अपना निर्णय दें । इससे बहुत बचोगे

प्रश्न: श्रीमान, गुनाहों का मालूम होते हुए भी गुनाह कर जाते हैं । बाद को पछतावा भी होता है पर बाद को पछतावा भी होता है पर उस वक्त हो ही जाते हैं

उत्तर: यह गुनाहों का मालूम होना ही सबसे बड़ी बात है वरना संसार में इतने गुनाह हो रहे हैं किसी को भी मुड़कर देखने की फुर्सत ही नहीं है । कोई चाहता भी नहीं, मालूम करना छोड़ना तो दूर रहा । आप गिरेंगे स्वाभाविक ही है फिर चलेंगे फिर गिरेंगे । इसी तरह से एक दिन उसकी कृपा से उस विरद से आप चढ़ जाएंगे ।

प्रभु को उसके विरद की याद दिलाते रहे । हे मालिक ! मैं तो ऐसा हूँ पर तेरा विरद कैसा है । तू उसकी लाज जरूर रखेगा ।

और इस तरह लाज जरूर रख भी लेगा ।

प्रश्न: ध्यान में कभी कभी शरीर हिलने लग जाता है ।

उत्तर: देख लेना चाहिए कि फिर सुधार कर लेना चाहिए ।

प्रश्न: इस हेतु ख्याल ही नहीं रह पाता है ।

उत्तर: यह तंद्रा आने के कारण होता है । तंद्रा आते ही सजग हो जाए, फिर लक्ष्य की ओर ध्यान लगाएं । ईष्ट व उसके इश्क (प्रेम) को याद रखना है । उस बात का साधना में ध्यान रखें ।

प्रश्न: साधन हो नहीं पाता है ।

उत्तर: अगर साधन हृदय चक्र पर बताया गया है तो वहां अन्यथा आज्ञा चक्र पर बताया गया तो वहां, सूरत को स्थिर करने का यत्न करें । यायह सब स्वाभाविक रूप से ही होना चाहिए । अगर फिर भी न हो पाता हो तो कंठ व इस तरह से फिर जिह्वा से पुकारे ।

प्रश्न: श्रीमान, फिर भी नहीं हो पाता है, मतलब यह कि वह या इनसे कोई साधन दिन भर याद नहीं रहता है । दुसरे शब्दों में अर्ज़ है की लक्ष्य दिन भर याद नहीं रहता ।

उत्तर: नहीं रहेगा यह स्वभाविक ही है ।

प्रश्न: फिर भी कोई एक अभ्यास बताएं ।

उत्तर: अभ्यास एक ही तो है । संसार से वैराग् व परमात्मा से अनुराग । कहां परेशानी हुई । अपने ईष्ट चरणों को दृढ़ता से पकड़े रहे ।

प्रश्न: परन्तु चित् एकाग्र हो ही नहीं पाता है । मन लगता ही नहीं है ।

उत्तर: लगेगा कैसे, हम तमाम संसार की बातें दिन भर अंदर जमा करते रहते हैं । ध्यान में ये सिनेमा के रील की तरह चलती है । घर में चिंता, मकान की चिंता, बन गया तो उसके किरायेदार की चिंता । इस तरह के विचार, इच्छाएं जितने कम होंगे उतना ही साधन ठीक बनता जाएगा ।

इसके अलावा इस रास्ते में जल्दी न करें । सब कुछ सहज ही होता रहे ।

प्रश्न: दर्शन का एक एक मात्र उपाय कोई हो तो ठीक रहे ।

उत्तर: मां दूध नहीं पिलाती है तो बच्चा क्या करेगा ? रोएगा ना । तो इसी तरह से व्याकुलता हममें भी रहे ।

जिस तरह कभी आप सामूहिक सतसंग में भावी वार वो रो पड़ते हैं, पूर्णतया विवशता प्रकट करते हैं ऐसे ही अकेले में रोएँ गिडगिडाएँ । यही एकमात्र उपाय है ।

प्रश्न: अगर कोई शब्द सुनाई दे तो शायद जरूर सहूलियत से अभ्यास बन सकता है । मुझे तो कोई शब्द सुनाई नहीं देता है ।

ऊतर: यह अच्छी हालत है । कुछ सुनाई नहीं दे, प्रकाश न दिखे ;देखे परन्तु मन लगा रहे । यह सबसे अच्छी हालत कही गई है फिर भी अगर आपको शब्द सुनना है तो परमात्मा या गुरुदेव (दोनों में एक ही बात है) के चरणों में बैठे प्रेम से । एक दो भजन पढें फिर उनकी लीला में अपने आपको लीन करने का यत्न करें । अपने आप को एकदम खाली कर दें । फिर ध्यान में तल्लीन हो जाये । कुछ दिनों के अंदर ही आपको सब सुनाई देगा ।

जैसा कि मैंने पहले अर्ज किया है हमारा यह लक्ष्य नहीं है । यह तो रास्ते को बतलाने वाला ही है । मंजिल तो अपने ईष्ट के इश्क में अपने आपको मिटा देना है उसको प्यार बनाना है । करुना से पुकार करनी है ।

(तब प्रेम पूर्वक कुछ भजन पूज्य भाई साहब ने स्वयं पढकर प्रेम मार्ग की उच्चता दर्शायी)

मांस गया पिंजर रहुया, ताकन लागे काग ।
साहिब आजहूँ न आइया, मंद हमारे भाग ॥
कागा सब तन तन खाइयों, चुन-चुन खाइयों मांस ।
दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस ॥
और कोई कार्य भाये ही नहीं, ऐसी हालत स्वत: ही हो जाए:--
विरसत नाहीं मन ते हरी ।
यह प्रीती महा प्रबल भई आन विषय जरी ॥ टेर ॥
बूंद कहाँ तियागी चातक मीन न रहत घरी ।
गुन गोपाल उचारत रहना , टेंक एह परी ॥१॥
महानंद कुरंग मोह्यो बेध तीच्छन सरी ।
प्रभु चरण कमल रसाल 'नानक' गांठ बांधि परी । ।
ये चरण कमल मुझे रसाल लग रहे हैं । वहीं मुझे रस आने लग गया है । आनंद आ रहा है ।
प्रभु अब तो मेरी यही मनोरथ है कि ।
प्रभु जी यही मनोरथ मेरा ।
कृपानिधान धाल मोहि दीजै, करी संतन का चेरा ॥ टेर ॥
प्रातःकाल लागौ जन चरनी निसी बासर दरसन पावौ ।
तन मन अरप क रौ जन सेवा, रसना हरि गुण गावौ ॥१ ॥
सांस सांस सुमिरौ प्रभु अपना, संत संग नित रहिये ।
एक आधार नाम न मेरा, आनन्द 'नानक' यह लहिये । । २ । ।

(२९)

तीन प्रकार के चरण

(इलाहाबाद, २१-१-८३ प्रातः)

संतों ने सतगुरु के चरणों की महिमा खूब गाई है । ये सदगुरु के चरण क्या है ? ईश्वर सर्व व्यापक है और उसकी कृपा की धार प्रतिक्षण सब प्राणियों पर एक जैसी बरस रही है । इस बारिश को सूफियों ने 'फैज' कहा है, संतों ने 'अमृत' कहा है, ईसाइयों ने 'ग्रेस' (Grace) कहा है । अरविंदो जी ने 'भगवती प्रसादी' कहा है । इसी को 'प्रभु के चरण' कहा गया है कि इन चरणों को पकड़कर इन चरणों की सेवा करके हमें प्रभु तक पहुँच सकते हैं । तो यह फैज अमृत, ग्रेस क्या है ? जैसे सूर्य है और उसका प्रकाश है उस प्रकाश को पकड़ते हुए हम सूर्य तक पहुंच सकते हैं । उस प्रकाश में वही गुण है जो सूर्य में है । प्रभु के जो गुण हैं वह इस धार में, इस अमृत में है ।

इस फैज़ को , इस भगवती प्रसादी को कैसे प्राप्त करें ? तुलसीदास जी ने रामायण में शुरू में ही श्रद्धा और विश्वास पर बल दिया है । श्रद्धा और विश्वास तभी आता है जब व्यक्ति को कुछ थोड़ी सी अनुभूति हो जाती है । केवल बातों पर श्रद्धा और विश्वास पुख्ता नहीं होतेहै । सम्मान तो हो जाएगा आदर तो हो जाएगा परंतु श्रद्धा और विश्वास बिना कुछ जाने हुए नहीं आते हैं । तो इन चरणों को कैसे पकड़े ? मन को पहले निर्मल कर लें, वातावरण को भी कुछ योग्य (शुद्ध) बना ले । साधना में जिस वक्त बैठे प्रभु के गुणगान कर स्तुति करें और हृदय की झोली फैला कर बैठ जाए । यानी शरीर को ढीला छोड़ दें, बिल्कुल ढीला, पूर्णतया रिलैक्स्ड । ईश्वर से प्रार्थना करें कि हे प्रभु ! हमें प्रेम प्रदान करें , हमें अपनी शरण में ले ले । अब मैं अपनी कृपा प्रसादी प्रदान करें और मन ही मन उस का नाम (जो भी आपको अच्छा लगता है) लेते रहें । दो या तीन मिनट बाद आप अनुभव करेंगे, बर्षों की प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं है । उसी वक्त तुरंत आपको उसकी अनुभूति हो सकती है । आप देखेंगे दो तीन मिनट बाद आपके शरीर को कुछ छू रहा है अंदर और बाहर, अगर आप इसी प्रकार बैठे रहेंगे तो भीग जाएंगे । इस प्रसादी से इस अमृत से इस फैज़ से । जितना शरीर को ढीला छोड़ेंगे , समर्पण भाव में बैठेंगे और मन भी शांत होगा तो इन चरणों की अनुभूति तुरंत ही हो सकती है । और यदि व्यक्ति यही अभ्यास करता रहे गुरु महाराज (महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज) ने कहा है कि यदि छह महीने यही अभ्यास लगातार चौबीस घंटे करता रहे तो उसको पूर्णतया लय अवस्था प्राप्त हो सकती है । उसका भीतर और बाहर दोनों ही ईश्वरमय हो जायेंगे । परंतु

मन यह करने नहीं देता है । इसलिए मन को शांत करने का । जब तक सद्गति नहीं आती तब तक मन स्थिर नहीं होगा एकाग्र नहीं होगा । और जब तक शरीर में तनाव रहेगा तब तक इस अमृत प्रसादी, भगवती प्रसादी का पूर्ण अनुभव नहीं हो सकता । अपने आपको पूर्णतया समर्पण कर देना है ।

व्यवहार में, जिस स्थिति में भी आप रहते हैं, संतुष्ट रहें । यह संतोष का अभ्यास जो व्यक्ति करता है वह व्यक्ति इस प्रसादी को तुरंत ग्रहण कर लेता है अर्थात भीतर में किसी प्रकार का तनाव न हो, जैसे गाढ़ निद्रा में व्यक्ति की अवस्था होती है, इसी प्रकार जाग्रत अवस्था में होनी चाहिए । यह प्रसाद लेने का तरीका बच्चे भी कर सकते हैं स्त्रियाँ भी कर सकती है, हम सब कर सकते हैं । और दूसरी जो भी साधना करते हो उसके साथ इसको करके प्रत्येक व्यक्ति लाभ उठा सकता है । कोई मूर्ति पूजा करता है, मंदिर में जाता है उसको भी ऐसा ही सोचना चाहिए कि भगवान सामने बैठे हैं । वैसे तो ईश्वर की ओर से कृपा आती है पर मंदिर में जो मूर्ति स्थापित है उसके द्वारा भी ली जा सकती है । और गुरु के द्वारा भी ली जा सकती है । मंदिर में जाते हैं तो मंदिर में भी पहले आराधना करते हैं, प्रार्थना करते हैं, अपने ईष्टदेव की मूर्ति के सम्मुख बैठ जाते हैं । उस समय यह ख्याल करें कि यह प्रसादी उनके हृदय या मस्तिष्क में से निकल कर हमारे शरीर में फैल रही है । जिस स्थान पर यह कृपा वृष्टि अधिक होगी यह समझ लेना चाहिए कि वह पवित्र स्थान है । तो यह प्रसादी मूर्ति के माध्यम से भी ग्रहण कर सकते हैं,गुरु से भी कर सकते हैं,किसी पुस्तक में श्रद्धा हो तो उसके माध्यम से भी ग्रहण कर सकते हैं क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है । कृपा तो प्रभु की है, आप मूर्ति द्वारा, गुरु या सीधा प्रभु से लीजिये । सूफी लोग, संत लोग बहुधा यही साधन करते हैं ।

दूसरा चरण यह है कि महापुरुष जो आदेश दें, जो उपदेश दे, उनको श्रद्धा से सुने । उनके अनुसार अपने जीवन को बनाने का प्रयास करें । उनका उपदेश ही उनके चरण है । उनकी सेवा क्या है ? उनके चरण की सेवा क्या है ? उनके उपदेशों का पालन करना । उनके आदेश या उपदेश क्या होता है कि अपने आपको बनाओ । शरीर को स्वस्थ रखो, मन को स्वस्थ्य रखो यानि मन के विकारों से मुक्त रखो । उसको सद्गुणों का भोजन दीजिये, बुद्धि को स्वस्थ रखिये यानि इसके भीतर में जो संशय है या जो भय की वृत्तियाँ हैं या और जो भी किसी प्रकार के अवगुण है उनसे मुक्त होकर शुद्ध बुद्धि स्थित प्रज्ञ अवस्था यानि (कोई भी अवस्था आ जाती है, स्थिति आ जाती है तो उस स्थिति में आप सही निर्णय ले सके) बुद्धि हंस गति आ जाए, वह समझ सके कि सार क्या है और आसार क्या है यानि आत्मा आत्मिकता, क्या है ? ईश्वर क्या है ? और ईश्वर का अस्तित्व क्या है । तो जो बात अपने

हित में है उसको पकड़ लें और जो अहित में है उसको छोड़ दें । यही गुरुजन कहते हैं और कुछ नहीं कहते हैं । महर्षि रमन ने तो यहां तक कह गए हैं कि आपको किसी से प्रेम करने में संकोच होता है तो अपने साथ प्रेम करें, अपनी सेवा करें । अपनी सेवा क्या है ? अपनी सेवा ही संसार की सेवा है । जैसे हिंसा है, सभी कहते हैं कि किसी के साथ हिंसा नहीं करनी चाहिए । पहले अपने साथ हिंसा नहीं करनी चाहिए, यदि किसी पर क्रोध करते हैं तो इसका प्रभाव किस पर पड़ेगा ? क्रोध करने वाले पर । उसका चित्त दुखी हो जाएगा, क्षुब्धता उत्पन्न होगी, मन चंचल हो जाएगा । मन में अशांति हो जाएगी तो यह आपने क्या किया ? अपने प्रति हिंसा की, अपने को दुःख दिया, इससे बचे । किसी से आप घृणा करते हैं तो आप क्या समझते है किसी दूसरे को दुःख पहुँचता है अपने को दुःख पहुँचता है । आप झूठ बोलते हैं किसी दूसरे की हानि हो जाए परन्तु पहले आपको हानि होगी । एक स्त्री संत ने लिखा है कि जो सत्यता का साधन करता है वो भला झूठ कैसे बोलता है तो वह अपने प्रति महान पाप करता है और पाप से इतनी मलीनता भीतर में हो जाती है कि उसको निर्मल करने में बरसों लगते हैं । तो पहले अपनी सेवा करो । इसके बाद और आगे बढ़ो । ईश्वर और आत्मा आपके भीतर में है, बाहर का ढूंढते हो ? अपनी आत्म की अनुभूति करे, आत्मा के दर्शन करें यह कोई आसान बात नहीं है । अपने आपको शुद्ध निर्मल करते चले जाइए तो आत्मा की धीरे धीरे अनुभूति हो जायेगी अर्थात अपनी सेवा करते जाइये अपने आप को धोते चले जाइए, ज्ञान से, या भक्ति से, जैसी आपकी वृत्ति हो, अपनी सेवा करें । यह गुरु के चरण है ।

तीसरा जो चरणों का अर्थ लिया जाता है, वह शारीरिक चरण है । जैसा व्यक्ति होता है, वैसे ही उसके भीतर में रिश्में निकलती हैं । यदि हमारे भीतर में बुरे विचार उठते हैं तो हम अपनी पूरी तरंग (Vibrations) से वायुमंडल को दूषित करते रहते हैं यह महान पाप है । संत के भीतर में प्रेम होता है सत्यता होती है, आनंद होता है, शांति होती है । उसके भीतर में से इन गुणों के रश्मिये अप्रयास ही निकलती रहती है । जो प्रयास से भी होती है उसमें मन भी शामिल होता है उसमें नेकी भी हो सकती है बदी भी हो सकती है, महापुरुष कभी भी मन से तरंगों (Vibrations) को नहीं निकालते । वो स्वत: ही और अप्रयास की आत्मिक रश्मियें प्रदान करते हैं । उन का शरीर इन तरंगों (Vibrations) से, इन रश्मियों से पूरित होता है उनका पूर्ण शरीर इन गुणों के कारण पवित्र होता है । कबीर साहब चरणों द्वारा दीक्षा दिया करते थे । पाँव का अनूठा मस्तक पर छूते थे । अर्थात शरीर द्वारा जो आत्मिक रश्मियां प्रस्फुटित होती थी उसकी प्रसादी देते थे । यहां गंगा जी के किनारे पर पंडित जन बैठे होते हैं आप स्नान करके आते हैं मतलब है कि भीतर से पवित्र होकर आते हैं अधिकारी बनकर आते हैं तब यह पंडित जी हमारे मस्तिष्क पर चंदन का तिलक लगाते हैं । चन्दन शीतलता का

प्रतीक है । अगर वह पंडित उन संतो जैसा हो जैसा कि मैंने निवेदन किया है जैसे कबीर साहब करते थे, वह उंगली छू कर आपके आज्ञा चक्र पर चन्दन लगाते हैं तो उनकी आत्मिकता हमारे भीतर में प्रवेश करती है । बाहर से शीतलता मिली और और भीतर में आत्मिक शीतलता मिली । अब तो न वे ब्राह्मण रहे, न हीं वे अधिकारी रहे । न हम मानते हैं की स्नान कैसे करना है । न वह पंडित जानते हैं कि आत्मिक प्रसादी कैसे दी जाती है ? वह केवल एक रस्म रह गई है ।

कहने का मतलब यह है कि संतों के चरणों द्वारा आत्मिक शक्ति निकलती है आत्मा की तरंगें निकलती हैं । यदि संत हमें आज्ञा दें और हम उनके चरण छुएँ उनकी सेवा करें तो उनके चरणों द्वारा उनके भीतर जो कुछ भी है प्राप्त कर सकते हैं । परंतु संत किसी से सेवा लेते नहीं है । उनके दो कारण हैं, एक तो जो सेवा करने वाले हैं वह पवित्र आत्मा है भी या नहीं, यदि वह अपवित्र है तो वह भी अपना कुछ न कुछ प्रसाद दे जाएगा । दूसरा यह कि इससे अभिमान हो जाता है । बच्चे को इजाजत दे देते हैं परंतु बड़ों से नहीं कराते हैं ।

यह तीन प्रकार के चरण हैं ।इन गुणों की महिमा शास्त्रों में और संतों की वाणी में की गई है । इन तीनों चरणों में से जो भी चरण जिन्हें मिल सके, वे भाग्यशाली होंगे । प्रभु की कृपा और महापुरुषों का उपदेश, और तीसरा उनकी आत्मिक प्रसादी । आत्मिक प्रसादी उनके पास बैठकर प्राप्त होती है इसी को सत्संग कहते हैं यानि ऐसे व्यक्ति का संग करने जो पूर्णतया सत्यता का रूप बन गया है । उसी को 'संत' कहते हैं और उसी का संग 'सत्संग' कहलाता है । दो चार भजन पढ लिए, कीर्तन कर लिया यह सत्संग नहीं है । सत्य का संग चाहे संत का हो या ईश्वर का हो , वही उत्तम है । ईश्वर का भी संग हो सकता है । ईश्वर के संग का मतलब है कि उसके समीप होना उसके चरणों को पकड़ कर उन तक पहुंचना एवं अपने आपको उनके चरणों की रज बन जाना । मतलब यह है कि अहंकार से मुक्त कर अपनी आत्मा को उनकी आत्मा में मिला देना । यह 'सत्संग' है ।

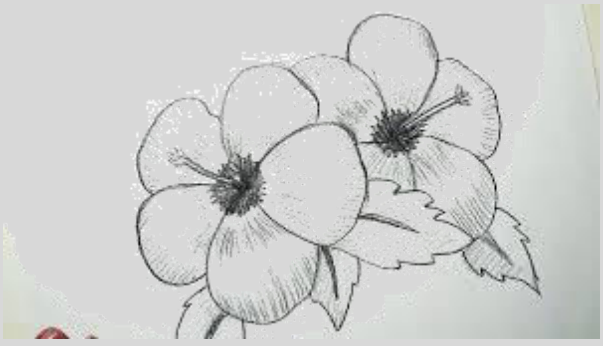

(३०)

समर्पण कैसा हो ।

गोरखपुर, १३ मार्च १९८३ (प्रातः)

परमात्मा के मनुष्य को अपने जैसा बनाया है अर्थात मनुष्य में वही गुण है जो परमात्मा में है । अंतर है मात्रा का, अन्यथा वही गुण जो परमात्मा में है, वे सब गुण आप सब लोगों में है । प्रभु तो पावन स्वरूप है, दुःख सुख से निरंतर अछूते रहते हैं । यदि आप शिव भगवान की तस्वीर देखें तो उनके शीष से गंगनीर बहता रहता है, प्रेम और ज्ञान बहता रहता है अर्थात उनके व्यवहार में कोई झंझट नहीं है, किसी की बुराई नहीं है । सब की सेवा है, सबको प्रेम भी प्रदान करते हैं । सबको ज्ञान प्रदान करते हैं । सबको आनंद देते हैं । परन्तु हम क्यों भीतर से दुखी हैं ? सब महापुरुष ऐसा कहते भी हैं पुस्तक भी हम पढते हैं (और कभी कभी अनुभव भी होता है) तब भी हम भीतर में दुखी क्यों है ? जो सत्संग में नहीं आते उनके लिए तो कुछ कहना ही नहीं चाहिए । परंतु जो सत्संग में आते हैं और जो इस रास्ते पर चल पड़े हैं वे क्यों दुखी रहते हैं ? कारण उसका एक ही है । जो दुःख सुख से अछूता है वह हमारी आत्मा है, जो हमारे भीतर है, उसके ऊपर आवरण है शरीर का प्राणों का, मन का, खुदी का, आनंद का । दुःख सुख को कौन अनुभव करता है ? हमारा यह अहंकार मन बुद्धि बल मिलकर । तो जब तक हम निज-स्वरूप में, आत्मरूप में स्थित नहीं होते हैं तब तक सुख का दुःख का अनुभव होना स्वाभाविक ही है । किसी का दोष नहीं है । छोटा सा उदाहरण है, जिन्होंने योगानंद जी की पुस्तक पढी है उनको मालूम है कि उन्होंने एक जगह अपनी पुस्तक में लिखा है कि जब वे अपने गुरु महाराज की सेवा करते थे तो गुरु महाराज उनको बहुत चाहते थे । बंगाल में श्रीरामपुर में थे । वहां बहुत मच्छर होते है । शाम को रोज मच्छरदानी लगा लिया करते थे । एक दिन गुरुवार ने कहा कि आज मच्छरदानी नहीं लगेगी, न गुरु महाराज के लिए, न योगानंद जी के लिए । रात हो गई समय गुजरता गया परंतु योगानंद सो नहीं रहे हैं क्योंकि मच्छर इतने मोटे थे कि सोने नहीं दे रहे थे । रात्रि १२-१ बजे का टाइम हुआ था तो बाबा (श्री युक्तेश्वर जी) बोले–"योगानंद ! तू अभी सोया नहीं है" जरा डांट कर कहा । उनके कहने का मतलब योगानंद जी समझ गए कि इतने दिन साधना करते हो गए अभी तक क्या ध्यान शरीर पर ही है इसीलिए कहते हैं । मच्छर किसे लगते हैं ? शरीर का अनुभव किसको होता है

? मन को । अभी तक हमारी सूरत वही फंसी हुई है । समझ लिया, साधने की, और सो गए ।

तो जो व्यक्ति आत्म स्थित रहता है उसको दुःख सुख नहीं होता है । इसका साधना क्या है ? आत्मा का साक्षात्कार करना या अपने स्वयं रूप में स्थित होना या प्रभु के चरणों में रहना । इसके कई साधन है । भक्ति का साधन, प्रेम का साधन, योग का साधन, अष्टांग योग का, वेदांत का साधन, ज्ञान का साधन । ईश्वर के प्रति समर्पण के भी कई साधन हैं । हमारे यहां प्रेम और भक्ति का साधन है । इसी में ज्ञान भी आ जाता है, प्रेम भी आ जाता है । स्वामी रामदास जी लिखते हैं कि केवल प्रभु के नाम लेने से यह स्थिति आ सकती है और वे नाम लिया करते थे ॐ, श्री राम, जय राम, जय जय राम । उन्होंने बड़ी दृढ़ता से लिखा है कि आत्मा के साक्षात्कार करने में मैंने कोई अन्य साधन नहीं किया । केवल नाम जाप से ही मुझे महान अवस्था प्राप्त हुई है । कुछ साधन उन्होंने किए हैं उसका सार भी यही था आत्मा का साक्षात्कार । स्वामी रामदास जी आदि से लेकर अंत तक ॐ , श्री राम, जय राम, जय जय राम का ही उच्चारण किया करते थे । यही उनका साधन था । तो उनके कहने का मतलब यह था कि व्यक्ति केवल नाम के उच्चारण इस स्थिति तक पहुंच सकता है यानि आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है परमात्मा के दर्शन कर सकता है । परन्तु हम भी तो नाम लेते हैं हमें क्यों नहीं साक्षात्कार होता ? हम तो अभी पहले ही चरण में नहीं आए हैं । हमारा नाम में रुचि नहीं है, हम सिनेमा देख सकते हैं, टीवी देख सकते हैं, और अन्य स्थानों पर जा सकते हैं परन्तु प्रभु के लिए प्रेम नहीं है । उसमें कोई रुचि नहीं है । नाम के सिमरन के साथ जब तक प्रभु के लिए तड़प नहीं होगी तब तक कितना भी नाम लेते रहिये । तोते की तरह कुछ भी नहीं बनने का । जिसका नाम ले रहे हैं उसके दर्शन करने के लिए तडप होनी चाहिए इसके अतिरिक्त उसके प्रति श्रद्धा और विश्वास होना चाहिए । संसार में जितने स्वजन संबंधी है, सबके साथ यथायोग्य व्यवहार तो करना है, परन्तु ईश्वर के से अधिक किसी से भी प्रेम नहीं करना है । निरंतर ईश्वर या गुरु की याद बनी रहे वह भी प्रेम से, श्रद्धा से, विश्वास के साथ जैसे सरल बच्चा नवजात शिशु माँ की गोद भी संतुष्ट रहता है । इसी प्रकार हमें प्रभु के चरणों में रहना है । जो व्यक्ति इस तरह प्रभु के नाम का स्मरण करता है उसे प्रभु के दर्शन हो सकते हैं अपनी आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है तथा संसार में या भीतर में जितने दुख सुख हैं उनसे व्यक्ति मुक्त हो सकता है । ज्ञान कहता है कि मूर्ख तू शरीर नहीं तू तो आत्मा हैं । सुख दुख आत्मा को तो नहीं होता है । पर ज्ञान भी थोथा ज्ञान नहीं होना चाहिए, अनुभूति होनी चाहिए ज्ञान की । “मैं आत्मा हूँ”, इसकी अनुभूति होनी चाहिए । तब वह कह सकता है “अहं ब्रह्मास्मि” ।

हमारी स्थिति अज्ञान की है । हमें भूले हुए हैं । ना तो हमारे में सच्ची प्रीति है यानि प्रेम साधना भली भाति नहीं करते हैं । ज्ञान को थोड़ा बहुत समझते तो हैं मगर विज्ञानी नहीं है । हम तो किसी रास्ते पर भी सही तरीके या गंभीरता से नहीं चल रहे हैं । अष्टांग योग भी इसलिए तैयारी करता है । यम, नियम, प्राणायाम, आसन, प्रतिहार, धारणा, ध्यान, समाधि और अंत में आत्मा का परमात्मा में लय हो जाना । हम सब भी साधना करते हैं, मौन में बैठते हैं, वह यही साधना है । अपने आप को पूर्णतया प्रभु के चरणों में, गुरु के चरणों में, समर्पण कर देते हैं । जो वास्तव में समर्पण करना चाहिए वह नहीं करते हैं । हे प्रभु ! शरीर भी आपका, मन भी आपका, बुद्धि भी आपकी, आपके संसार की जितनी वस्तुएं हैं जिसको लोग कहते हैं 'मेरी है' वह भी सब आपकी है । तब तो जब पूर्णत: सब कुछ समर्पण कर देते है तो फिर हमारे भीतर में आसक्ति क्यों रहती है ? 'यह सब मेरा है' यह विचार बना रहा है । यह तो झूठा समर्पण है । गीता का सार है जो व्यक्ति महासक्ति को छोड़ देता है, पूर्ण समर्पण कर देता है । भगवान के चरणों में उसको कुछ करने की जरूरत नहीं है । यह प्रेम साधना है, यदि आपका प्यार गुरु के साथ हैं तो आपको कुछ करने की जरूरत हीं क्या है ? सभी गुरु का है । फिर तो दु:ख सुख किसका होता है ? यह भीतर बैठा हुआ अहंकार केवल ऊपर ऊपर से कहता है परन्तु यह समर्पण नहीं करता है इसलिए दुखी है ।

संक्षेप में सब दुखों से निवृत्ति का एक ही साधन है की हमें अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाए । जब तक ऐसा नहीं होता तब तक दु:ख सुख की अनुभूति तो होगी हीं । इस जन्म-मरण के चक्कर से कभी नहीं छूटेंगे । यह सभी महापुरुषों ने लिखा है । तो हम सबको गंभीर होना होगा अपने प्रति, जिस रास्ते पर हम चल रहे हैं और निज स्वरुप के प्रति हमें गंभीर होना होगा कि हमारा लक्ष्य क्या है ? हमारा आदर्श क्या है ? और उस आदर्श की प्राप्ति के लिए क्या कर रहे हैं ? अर्जुन को भी क्तिनाई हुई भगवान के चरणों में समर्पण करने के लिए । आपका और मेरा कोई दोष नहीं है । हमारी वृत्ति ही ऐसी है की पिछले संस्कार ही ऐसे हैं कि जैसे समर्पण होना चाहिए वैसा हम नहीं कर पाते । तब भी लक्ष्य हमारा यही है । तो इस समर्पण की तैयारी के लिए हमें पहले धर्म आश्रय लेना होगा । अपने जीवन को अर्थात शरीर को मन को बुद्धि को गुरु के आदेश के अनुसार स्वस्थ रखना है । जिन्होंने गुरु दीक्षा नहीं ली है उनको चाहिए कि धर्म शास्त्र के अनुसार जीवन व्यतीत करें, प्रकृति के नियमों का पालन करें । धर्म के जितने नियम हैं अर्थात सत्य बोलना, झूठ नहीं बोलना, हिंसा नहीं करना, सब के साथ प्रेम, सबकी सेवा करना आदि इन सब का पालन करना चाहिए । जिसका जीवन धर्म का नहीं है उनका परमार्थ नहीं बन सकता है । यदि धर्म भी बन जाए परंतु यदि गुरु के साथ या ईश्वर के साथ प्रेम नहीं है उधर रूचि नहीं है, लगाव नहीं है, भाव नहीं है, तब भी व्यक्ति

कोरा ही रह जाता है, खाली रह जाता है । यह रास्ता है किसी तकनीक का नहीं है । यह रास्ता सरलता का है । नजाकत का है । इसमें विशेष गुणो की आवश्यकता है । महापुरुष अपने आप कहते ही **'नानक गरीब ढ पयो द्वारे'** समर्पण कैसे होता है ? अपने आप को नम्र से नम्र गरीब अजीज बनाते हैं । हमारे में यह अज़ीज़ी कहाँ है ? वो गरीबी दीनता कहाँ है ? भाइयों के साथ व्यवहार में वह नम्रता व्यवहार नहीं, संसार में जो व्यवहार हमारा है उसमें नम्रता नहीं, कठोरता है । जिस व्यक्ति के भीतर में कठोरता है वह इस रास्ते का अधिकारी नहीं । चाहे वह ज्ञान साधना करता हूँ, चाहे भक्ति का साधना करता हूँ, रास्ते दोनों ही ठीक है । यह मुख्य रास्ते हैं, मुख्य साधन है, गलत नहीं है । महर्षि रमन कहा करते थे कि जिसकी जैसी वृत्ति होती है जैसे पिछले संस्कार होते हैं उनके परिणाम स्वरूप व्यक्ति अपनी साधना अपना लेता है । उसे कहते रहिये कि ज्ञान का या अमुक साधना कर वह कर ही नहीं पाएगा । ज्ञानी से कहिये भक्ति की साधना करो, वह कर ही नहीं पाएगा । तो गुरुजन जैसे जैसे जिज्ञासु का स्वभाव होता है उसी प्रकार उसे साधना बदला देते हैं । एक ही साधना सबके लिए नहीं होती । हमें अंतर में गुरु के दर्शन करने है या आत्मा का साक्षात्कार करना है या ईश्वर के दर्शन करने है । यह तीनों बातें एक ही हैं । इस आदर्श की प्राप्ति के लिए हमें खूब सोचना चाहिए । साधना में पहले रुचि लें, संसार के सब भोगों को, सब संबंधों को, सब विचारों को एक तरफ रखें । जिस प्रकार जल से बाहर मछली निकाल देने पर मछली तड़पती है उसी प्रकार की तडप , ईश्वर से मिलने की हो । जब तक हमारी स्थिति ऐसी नहीं होती तब तक हमें कुछ प्राप्त होने की आशा नहीं रखनी चाहिए । इससे कम में कुछ नहीं बनेगा । चाहे बच्चे हो, चाहे बूढ़े हो सभी के लिए एक ही आदर्श है । इस आदर्श को सदा अपने सम्मुख रखना चाहिए । चाहे पुराने अभ्यासी है चाहे नये लोग, आत्मा का साक्षात्कार हीं असली प्रेम है । इसी में आनंद है इसी में शांति है । उससे पहले मन को सुख पहुंच सकता है । मनुष्य सोचता है कि आज जरा अच्छी तरह बैठे, पूजा में थोड़ा सा मन लगा इससे अधिक कुछ नहीं ।

तो इसमें संतुष्टि नहीं होनी चाहिए । गुरु महराज (परम संत डॉक्टर कृष्ण लाल जी महाराज) ने प्रवचन में बताया कि गुरु भक्ति कैसे की जाए, क्योंकि गुरु से प्रेम करने से गुरु की भक्ति करने से भी आत्मा का साक्षात्कार या गुरु के या परमात्मा के दर्शन होते हैं । पहले गुरु के शरीर की सेवा करते हैं, ये श्रीगणेश है । जिस किसी को गुरु की शारीरिक सेवा करने का अवसर नहीं मिला उसमें सरलता नहीं आएगी । गुरुजन अपनी सेवा नहीं कराते । शरीर की सेवा बहुत कम कराते हैं । यदि गुरु सेवा का अवसर प्राप्त न हो तो भाइयों की सेवा करो यह भी गुरु सेवा है । माता पिता की सेवा करो ये भी गुरु सेवा है । इसके बाद गुरु के जो गुण हैं ईश्वर के जो गुण हैं उनको सराहते हैं ।जितना उसके स्वरूप को स्वरूप के गुणों को सराहेंगे

उतना ही निखार होता चला जाएगा । गुरदेव फरमाया करते थे जैसे लड़की की नई नई शादी होती है तो लड़की हर एक बात में अपने पति की बात करती हैं । जब वापिस आती है सुसराल से तो हर बात में अपने पति की बात करती है । रामदासजी ने भी ये लिखा है कि अपनी ईष्ट देव की चर्चा करते रहिये और हर वक्त उसका ध्यान रखिये हर वक्त उसके गुणों को सराहिये ।

मैं कई बार कहता रहा हूँ (शायद आपकी इससे सहमति न हो) वह समाधि जिसमें गुण नहीं है जिसमें शांति नहीं है, संतोष नहीं है, जिसमें निर्मलता नहीं है वह समाधि जड़ समाधी है चाहे आँख बंद करके कई कई घंटे बैठे रहिए । तो गुरु के या ईश्वर के गुणों को सराहो । इसी को कीर्तन कहते हैं । प्रभु की कीर्ति करो, उपमा करो । यह नौ प्रकार की भक्ति भी इसी में आ जाती हैं । भक्ति में अर्चना करते हैं, जल देते हैं, चावल चढ़ाते हैं, पुष्प रखते हैं, भिन्न भिन्न तरीके से आप अपने ईष्टदेव के साथ प्रेम का व्यवहार करते हैं, वह भी हमारी साधना को सफलता की ओर ले जाती है । पहले शरीर की सेवा की फिर गुरु के मन की सेवा की यानी उनके गुणों को सराहा फिर उनकी जो विज्ञान स्थिति ज्ञान की स्थिति है उनका अनुसरण करना चाहिए । जैसा वो आदेश दे श्रद्धा और विश्वास के साथ उनको सही माने , उस पर मनन कर उसे जीवन में उतारने की कोशिश करें । थोड़े से शब्दों में जो गुरु के गुण हैं उनको सराहते हुए उनकी स्मृति करते हुए उनको अपने जीवन में उतारें । आगे चलकर पूर्ण समर्पण होता है । इससे पहले नहीं होता । इसके लिए तैयारी करनी पड़ती है । तब आत्मा परमात्मा में या गुरु में लय हो जाती है । यदि सब इतना सरल होता तो भगवान कृष्ण, अर्जुन को शुरू में हीं कह देते, 'अर्जुन क्यों इतने झगड़े में पड़े हो' समर्पण करो और सब बात छोड़ो । अट्ठारह अध्यायों का उच्चारण करने की आवश्यकता क्या थी ? भगवान ने अर्जुन को समर्पण के लिए तैयार किया । एक साधन बताया और कहा ये नहीं कर सकते तो दूसरा करो । जरा सोचेंगे तो दूसरा साधन सरल नहीं है पर पहले साधन से वह कठिन है । परंतु व्यास जी ने उसकी सरलता से मनन की करने की कोशिश की । आगे चलकर और साधन बताये । भक्ति का साधन, संन्यास का साधन, योग की क्रियाएं निष्काम भाव से कर्म करना और यदि ये कुछ भी नहीं हो सकते कर्म फल छोड़ दो । अच्छा यदि कर्म फल नहीं छोड़ सकता तो फिर समर्पण कर दो । समर्पण करने के तैयार रहनी चाहिए । केवल शब्दों में यह कह देना कि

"मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तुज्झ तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मुज्झ" ।

यह शब्दों में तो सभी कह लेते हैं, वास्तविकता होनी चाहिए । जनक जी का महल जल रहा है लोगों ने कहा आपका महल जल रहा है । एक संन्यासी है वह दौड़ा दौड़ा गया कि मेरा तो

वहां लोटा रह गया है । जनक जी समझाते हैं कि तेरे लौटे के मूल्य में और मेरे महल के मूल्य में कितना अंतर है ? तू लोटे के लिए इतना पागल हो रहा है, ये मोह ये आसक्ति आसानी से नहीं छूटती है । कहने को कह लेते है ऐसा करना चाहिए । कभी दस पैसे जेब से गिर जाए तो दो तीन दिन तक याद करते रहते हैं कि कहाँ गये, कहाँ खर्च किए । पैसा आप खर्च कर लें तो कोई बात नहीं, कभी रुपये दो रुपये आपकी जेब से गिर जाए तो उसकी आपको तीन चार दिन तक याद रहती है ।यह कैसा है प्रभु के साथ प्रेम, प्रभु को क्या हम सचमुच सब कुछ समझते हैं ?

यह हर प्राणी जानता है कि मौत के बाद हमारा यार कुछ नहीं है । इस वक्त भी हम स्वप्न देख रहे हैं कि यहां हमारा क्या है , तब भी प्रत्येक व्यक्ति आसक्त हैं । वह कहता है में मोह में आसक्त नहीं हूँ परंतु व्यवहार में देखो तो सब प्राणी मोहासक्त है । कोई व्यक्ति नहीं मिलता जो मोहासक्त न हो । यह समर्पन कैसा है ? तो इस सबके लिए घबराना नहीं चाहिए । मेरे पास पत्र भी आते हैं, बातचीत भी आप लोग करते है कि समर्पण कैसे करें ? इसके लिए तो तय करना होगा ये साधारण चीज नहीं है । हां यदि ईश्वर कृपा हो तो उस व्यक्ति को कुछ नहीं करना होगा । ऐसे व्यक्ति को महापुरुष उसे अपने साथ लाते हैं । जैसे गुरु नानक देव, गुरु अंगद देव को अपने साथ लाये । पहले ही भेंट में, गुरु महाराज ने पूछा–'तुम्हारा नाम क्या है ?' उन्होंने कहा-- 'मेरा नाम है 'लहना' यानि जिसको किसी से कुछ लेना हो । तो गुरुदेव कहने लगे हमें देना है । महज़ ये दो शब्द कहे है और सब कुछ दे दिया । स्वामी रामकृष्ण परम हंस स्वामी विवेकानन्द जी को साथ लाए हैं । विवेकानंद भागते है तो उनके पीछे पीछे जाते हैं । देखिये गुरु शिष्य की कैसी लीला है । इस प्रकार का कोई संबंध हो तो ठीक है । इस प्रकार के व्यक्ति को कुछ नहीं करना पड़ता है । गुरु की या परमात्मा कृपा से ही सब कुछ हो जाता है । मगर यह कृपा सब पर नहीं होती, इसलिए हम सब को साधन करना चाहिए । साधना में पहली बात यह है कि साधना में रूचि उत्पन्न हो बिना रूचि उत्पन्न हुए आनंद नहीं आएगा और जब तक आनन्द नहीं आता, चित्त निर्मल नहीं होगा और जब तक चित्त निर्मल नहीं होता आप किसी तरफ नहीं बढ़ सकते । लोग बाग मन की एकाग्रता की बात कहते हैं कि मन एकाग्र नहीं होता । मन एकाग्र कैसे हो ? आपकी लगन कितनी है ? इसलिए एकाग्रता की विशेष चिंता नहीं करें, प्रेम की चिंता किया करें कि हमारा गुरु या ईश्वर की तरफ प्रेम क्यों नहीं उत्पन्न होता क्यों नहीं बढ़ता है ? हम संसार के व्यक्तियों का भय रखते हैं, पत्नी पति का भय रखती हैं, पति पत्नी का भय रखता है बच्चे माँ बाप का भय रखते हैं, संसार में हमारा जिसके साथ व्यवहार है उसके साथ थोड़ा भय रखते हैं, परन्तु ईश्वर के साथ हमारा कोई भाव या भय नहीं है । पूछिये अपने मन से कि

क्या ईश्वर या गुरु का भय रखते हैं ? इसके पहले सतगुरु को अपनाइए । ईश्वर से प्रेम उत्पन्न करिये । व्याकुलता विरह यह उत्पन्न होने चाहिए । इसकी चिंता करनी चाहिए । मन एकाग्र होता है या नहीं ये साधारण सी बात है । मन एकाग्र हो सकता है इसके कई तकनीक है । आप कहेंगे तो मैं बता दूंगा । मन एकाग्र करने में कोई दिक्कत नहीं लगती है । प्रेम उत्पन्न होने में देर लगती है । इसमें दिक्कत है । जो पुराने अभ्यासी हैं उनको अधिक टाइम देना चाहिए इस ओर क्योंकि वर्तमान जीवन काल में ही अपने स्वरूप में या गुरु में या परमात्मा के चरणों में स्थित होना है । सिर्फ थोड़ा कभी कभी प्रकाश देख लेना है या कभी कभी शब्द सुनाई आ जाए तो शुक्र है , रास्ता गलत नहीं है, परन्तु मंजिल अभी दूर है । गुरु महाराज ने लिखा है कि ये मामूली बातें हैं । प्रेम (आत्मा का प्रेम) आत्मा में स्थिति आनी चाहिए । तब सब दुखों से निवृत्ति अपने स्वरूप में स्थित होने से होगी या अंतर में गुरुदेव के दर्शनों से होगी । हमारे किसी संबंधी की मृत्यु हो जाती है तो दुःख होता है । क्यों होता है ? क्योंकि उससे हमारा सम्बन्ध है शरीर के साथ मोह है । जानते भी हैं कि ये जितनी संबंध हैं यह सब नश्वर है । ये जितने नाम और रूप देखते हैं सब को नाश होना है परन्तु फिर भी हम इन में फंसे हुए है । क्यों फंसे हुए हैं ? क्योंकि ईश्वर के साथ लगाव नहीं है ।वास्तविकता को नहीं समझते । बड़े बड़े लोग फंसे हुए हैं । हमारी गिनती तो कुछ भी नहीं है, हम तो साधारण व्यक्ति हैं । जैसे-जैसे आप आगे बढ़ते जा रहे हैं अपने लक्ष्य को अच्छी तरह समझते जाइए । उसकी प्राप्ति के लिए जीवन की बाजी लगाइए यही साधन है ।

(३१)

प्रभु के गुणों को अपनाना और भ्रम दूर करना

गोरखपुर, १४ मार्च १९८८

पहले भजन पढ़ा गया:--

दोय दोय लोचन देखां, हौ हरि बिन और न देखां ।
नैन रहे रंग लाई अब बेगल कहन न जाई । हौ हरि बिन.....
हमरा भ्रम गया भव भागा जब राम नाम चित्त लागा ।
बाजीगर डंक बजायी सब खलक तमासे आई ।
बाजीगर स्वांग अकेला, बाजीगर स्वांग सकेला ।
अपने रंग रमे अकेला । हौ हरि बिन.....
कथनी कहैं भरम ना जाई , सब कथ कथ रही लुकाई ।
जाको गुरुमुख आप बुझाई , ताके हिरदय रह्यो समाई । हों **हरी.....**
गुरु किंचित कृपा कीन्हीं सब तन मन दे हर लीन्हीं ।
कहे कबीर रंग राता मिलियो जग जीवन दाता । हो हरी.....

कबीर साहब की इस पवित्र वाणी में दो तीन बातें बहुत महत्व की है । एक तो उन्होंने अपने आत्मा की अवस्था बतलाई है । लोग कहते कि ईश्वर के दर्शन नहीं होते है । वे फरमा रहे हैं कि मुझे तो खुली आंखें से प्रभु के दर्शन होते हैं । हमें क्यों नहीं होते ? क्योंकि हमारा चित् मलीन है । जैसे हम होंगे जैसा हमारा चित्त होगा उसी का अक्स बाहर दिखेगा । बुरे आदमी को सब बुरे हीं दिखते हैं । भले आदमी को सब भले ही दिखते हैं । जिसके भीतर में निर्मलता है उसको बाहर निर्मलता ही दिखती है । जिसके भीतर में प्रभु विराजमान है उसको सब जगह हीं प्रभु दिखते हैं । तो हमें साधना में अपने ईष्टदेव को भीतर में बसाना है । सिर्फ तस्वीर को नहीं बसाना है उसके स्वरूप को और उसके गुणों को भीतर में बसाना है । इसलिए संत मत में तुलसीदास ने गुरु नानक साहब ने, कबीर साहब ने कहा है कि कलयुग में व्यक्ति का उद्धार कीर्तन द्वारा होगा । अर्थात प्रभु के गुणों का स्मरण करना बार बार स्मरण करना । जरूरी नहीं कि बाजा नबला लेकर संगीत की तरह गाया जाए । परंतु प्रभु

के जो गुण हैं उनको बार बार याद करना है । तस्वीर या गुरु के शरीर को ध्यान करेंगे तो जड़ता आ जायेगी । इसके लिए गुरु महाराज (श्री कृष्ण लाल जी महाराज) ने चेतावनी दी है । बार-बार केवल राम कहते हैं तो राम के साथ वह प्यारा राम जो सब जगह रम रहा है जो प्रेम का सागर है, जो आनंद का सागर है, जो शांति पुंज है ज्ञान निधि है , करुणा निधि है और जितने भी गुण हैं, उनका स्मरण करना है । गुणों को स्मरण करने से आपके भीतर में गुण अंकित हो जाएंगे, वही ध्यान है । हम कहते हैं कि हमारा मन एकाग्र नहीं होता । चिंता करें की प्रभु के गुण अपने भीतर में अपना लिए है बसा लिए है या नहीं ? एक ही गुण लीजिये । गुरुदेव कहते थे कि प्रभु का एक ही गुण ले लीजिये, उसको हृदय में बसा लीजिये , प्रभो के सब गुण अप्रयास भीतर मैं अंकित हो जायेंगे । प्रभु प्रेमस्वरूप है एक प्रेम को बसा लीजिये भीतर में । वो क्या एकाग्रता हुई कि साधना करते करते नींद आ जाती है या बेहोशी आ गई है । यह जड़ सुषुप्ति है । जाग्रत सुषुप्ति का मतलब यह नहीं । होश है परन्तु होश किस बात का है , प्रभु के गुणों का होश है, अपने शरीर का होश नहीं, अपने मन के दुर्विचार का होश नहीं । प्रभु के पवित्र विचार प्रभु के पवित्र गुणों का ध्यान है, उसके प्रति हमें होश है, जागृति है, उसके प्रति । जब तक उनके गुणों के प्रति जागृति नहीं होगी आपके भीतर में वो गुण बसेंगे कैसे ? इतने साल से सतसंग में हो गए तब भी मन शांत नहीं, कारण क्या है ? हम प्रभु के महान गुणों के प्रति अभिव्यक्ति नहीं करते है । गुणगान नहीं करते है । भक्त को ऐसा करना ही चाहिए, पर ज्ञानी भी करते हैं । आप शंकारचार्य को देखिये वो माँ का कितना गुणगान करते हैं । प्रभु का कितना गुणगान करते हैं । जितना अधिक गुणगान करेंगे उतना अधिक मन स्थिर होगा और मन स्थिर होगा प्रभु के गुणों में । एक तस्वीर के फ्रेम में यदि मन स्थिर हो जाए तो वह जड़ता की तरफ जाएगा । बगुला मछली की तरफ देखता है, उसकी एकाग्रता कितनी तीव्र होती है । शिकारी मछली पकड़ने के लिए सुबह से शाम तक बैठा रहता है हजारो लोग बाग गुजर जाते हैं उसके पास से कुछ भी पता नहीं होता । क्या यही एकाग्रता चाहते हैं हम लोग ? यह जडता है एकाग्रता नहीं है । यह तामसिकता की एकाग्रता है । हमें प्रभु के गुणों को अपनाना है, सत् स्वरूप को अपनाना है ऐसी एकाग्रता ही समाधि है वहीं स्थिरता है । गुरु के गुणों को पकड़ना है ।

दूसरी बात कबीर साहब ने कही है कि बातों भ्रम नहीं दूर होंगे । सारा संसार इतना कुछ लिख गया है इतना कुछ बोल गया है कि परन्तु मनुष्य का भ्रम नहीं जाता है । भ्रम का मतलब यह है कि मैं ईश्वर से अलहदा हूँ, यह भ्रम है । आपके भीतर में आत्मा है,

आप प्रभु के अंश हैं, परन्तु हमें विश्वास हिन् नहीं होता है । धन हमारे पास है परंतु हमें विश्वास नहीं कि धन हमारे पास है, यह भ्रम है । संसार को यह समझना है कि यह माया है जैसे शंकराचार्य जी ने शुरू में समझा , बाद में उन्होंने कहा कि नहीं, यह भगवान की लीला है । यह भ्रम है । इन्हीं भ्रमों को दूर करना निर्मलता की तरफ बढ़ना है । यह भ्रम दूर हो जाए तो आप आत्मा स्वरूप हो गए । आत्मा निर्मल हो जाए यही आपका स्वरूप है । इसी स्वरूप को पाना है । परंतु कबीर साहब कह रहे हैं कि केवल कहने से भ्रम नहीं जाते हैं, बात सुनने से भ्रम नहीं जाएंगे, खाली साधना करने से भ्रम नहीं जाएगा । जब तक गुरु मुख यानी परमपिता परमात्मा की कृपा नहीं होगी इस भ्रमों से मुक्त नहीं हो सकते । संत वाणी पढ़ कर देखिये सब एक ही मत है कि बिना ईश्वर के या गुरु के जो ईश्वर स्वरूप है उसकी कृपा के बिना मन का उद्धार नहीं हो सकता है । भ्रम दूर होना इसका मतलब है 'उद्धार' । इस माया के जंजाल से निकलना , बिना गुरु कृपा के नहीं हो सकता, ईश्वर कृपा के बिना नहीं हो सकता । अब ईश्वर कृपा कैसे हो इसके लिए हमें पात्र बनना है । इस पात्रता के लिए साधना करनी है ।

पिछले जन्मों के साधना द्वारा तो हमे यह मनुष्य चला मिला है, साधना द्वारा तो हमारी प्रगति उस तरफ हो रही है, पात्र बनने के लिए हो रही है परंतु जब तक प्रभु की नजर नहीं होगी उनकी कृपा नहीं होगी आत्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती । यह प्रकृति का परमात्मा का नियम । यह कहें कि इस रास्ते पर अपने बल से स्वतंत्र हो सकते हैं, नहीं । इसके लिए तुलसी दास जी कहते कि 'हारे को बलराम' । में 'अहम' मर गया । जो व्यक्ति इस राह पर अपनी हार मान लेता है पराजित हो जाता है अर्थात दीनता को, सच्ची दीनता को अपना लेता है पात्र हो जाता है । उस पर प्रभु की कृपा होती जाती है । अहंकारी चाहे सुबह से लेकर रात तक समाधि बैठा रहे कुछ नहीं होगा । गुरु महाराज सुनाया करते थे कि दो मित्र साधना करने के लिए निकले । वृक्ष के नीचे बैठे, उन्होंने खूब साधना की । एक की वृत्ति प्रेम की थी दूसरे की ज्ञान की थी या अहंकार की । मैं किसी वृत्ति या सिद्धांत की प्रतिक्रिया नहीं कर रहा हूँ । यह मन का जो स्वभाव है उसके लिए कह रहा हूँ । उनकी साधना से भगवान खुश हुए तो नारद जी को भेजा कि जाओ जो भक्ति करता है उसको कहो कि वृक्ष के जितने पत्ते है इतने जन्म जब और लोगे जब तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगी । हम उससे बड़े खुश हैं परंतु शर्त लगा दो कि इतने युग और भक्ति करो । दूसरा व्यक्ति था उससे कहा कि चार युग के बाद उसकी मुक्ति होगी । चार युग वाले को जब नारद जी ने ऐसा भगवान का संदेश दिया तो भीतर में उस के अहंकार को चोट लगी । मैंने इतनी साधना की अभी तक

भगवान कहते है कि चार जन्म मुझे और लेने पड़ेगे । हे भगवान ! अन्याय है आपके दरबार में न्याय नहीं है । नारद जी आप भगवान से कहिये कि ऐसा नहीं करना चाहिए । दूसरे व्यक्ति को जब कहा कि वृक्ष के जितने पत्ते हैं इतने जन्मों के बाद तुम्हें मोक्ष मिलेगी । वह कहता है "अच्छा भगवान खुश हुए है बड़ी कृपा है, नाचने लगा कि भगवान ने विश्वास दिलाया है कि मोक्ष मिलेगी । भगवान अपनी चरणों में लगाएंगे । बड़ी प्रसन्नता में वो इतना ना चा इतना खुश हुआ कि भगवान के दर्शन हो गए । उस प्रसन्नता में उसकी भक्ति साधना जितनी शेष रहती थी सब पूरी हो गयी । प्रभु की कृपा हो गयी, प्रभु प्रसन्न हो गये , वो स्वतंत्र हुआ ।

इस रास्ते पर दीन भक्त पात्र बन सकता है । और दीनता से प्रभु पात्र बन कर मोक्ष को अथवा अंतरधाम को पहुंच सकता है । ईश्वर की कृपा के लिए हर वक्त प्रार्थना करते रहना चाहिए । अपने शरीर, बल, मानसिक बल, बौद्धिक बल पर कभी गर्व नहीं करना चाहिए । इसमें हमारा क्या है यह तो जाने वाली चीजें है, इन पर क्या गर्व करें । इन सब को ईश्वर का हीं समझना चाहिए । यह भी दीनता का एक अंग है । मेरा नहीं है । "मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तुज्झ" । तो सेवक बने । हे प्रभु ! आपने जो वस्तु कृपा कर दे दी है आप जैसे कहिये मैं वैसे ही उसका उपयोग करूं । व्यवहार में दीनता हो हमारी बोलचाल में भी दीनता होनी चाहिए । व्यवहार में दीनता को मत छोडिये, विचारों में दीनता लाइए, व्यवहार में दीनता लाइए, साधना में दीनता लाइए । अधिकाधिक दीनता हो , झूठी दीनता नहीं हो, दिखावे की नहीं हो । सच्ची दीनता हो तब हम कहीं कृपा पात्र बनेंगे । हो सकता है कि भगवान हम से आकर कह दे की वृक्ष के जितने पत्ते हैं उतने जन्म और लेकर भगवान के दर्शन होंगे । हमें कम से कम विश्वास तो हो जाए । यदि विश्वास हीं नहीं है तो भीतर में भाव उत्पन्न करिए , प्रभु में कोई भी भाव उत्पन्न कर लीजिये ।

नौ प्रकार की भक्ति है, उसमे से जो भी भाव आपको अच्छा लगता है उस को पकडिये और उसकी पराकाष्ठा पर पहुंचने की कोशिश करिये । सेवा का भाव बनाए रखिये । उसको हीं दृढ करिए । सखा का भाव है , स्त्री और पति का भाव यह ऊंचे भाव है । यह जरूरी नहीं है, जो स्त्री है वही स्त्री का भाव रखे , पुरुष भी स्त्री का भाव लेकर चल सकते हैं । अंतिम भाव , कांता का भाव है । यह तो केवल राधा जी को ही प्राप्त हुआ था या तो दो चार गिनती के लोगों को प्राप्त हुआ था । बहुत ऊंचा भाव है । सब साधनों के बाद यह

अंतिम भाव पैदा होता है । शुरू में यहां तीन चार भाव हैं उनको लेना चाहिए । भाव के साथ भय भी होना चाहिए । जिसके साथ प्यार करते हैं उसके साथ प्यार का, प्रेम का भय भी होना चाहिए । कहीं मुझे से ऐसी बात न हो जाए कि मेरे प्रीतम नाराज हो जाए । तभी सच्चा प्यार होगा । संतमत में हाथ पांव की कमाई करने से उत्तमता है । हाथ पाँव से जो धर्मशास्त्र के अनुसार कमाई होती है उसी को शुद्ध कमाई कहते हैं । कबीर साहब भी ऐसा हीं करते थे । गुरु नानक खेती करते थे । हाथ पाँव की कमाई करके उसका भोजन सेवन करना चाहिए । गुरु महाराज (निर्वाण प्राप्त महात्मा श्री कृष्ण लाल जी) भी कहा करते थे कि ठीक है प्रभु ने लाखों रुपए दिए है आपको परन्तु आपके तो वह है जो आप स्वयं हाथ पाँव से कमाते हो । जैसे एक मजदूर कमाई करता हैं वैसे थोड़ी बहुत जरूर करनी चाहिए । उस कमाई से जो आय हो उसका भोजन बनना चाहिए । **सच कहे तो हमारे जीवन में धर्म है ही नहीं, सात्त्विकता है ही नहीं । जब तक व सात्विकता नहीं आएगी, सत्यता यानि परमात्मा की अनुभूति कैसे हो सकेगी ? सारा इर्द-गिर्द का वातावरण जितना भी है सब प्रतिकूल बन रहा है । हम सांस लेते हैं तो प्रतिकूल भावनाओं की सांस लेते है । सांस छोड़ते है तो बुरे विचार छोड़ते हैं । भोजन लेते तो ऐसी कमाई का भोजन होता है, क्या कहूं । और फिर भोजन बनाते हैं , घर में लड़ाई झगड़े से, अशांत मन से भोजन बनता है तो कैसे साधन में प्रगति हो ?** हमारे लिए धर्म वही है जो हमारे महापुरुषों का जीवन था । हमारे पूर्वज तो मेहनत करें, हम तकियों में, गद्दों में, बैठकर आराम सेखाना खाए तो हमारी साधना कैसे सफल होगी ।

अपने विचारों को विश्वमय बना दीजिये अपने व्यवहार को विश्वमय बना दीजिये । आपकी अपनी सेवा, सबकी सेवा को विश्वमय बनाएँ, अपने हृदय को विशाल करें । जितना विशाल करते चले जाएंगे आपको उतना अधिक आनंद मिलेगा । यह बातें सिर्फ कहने मात्र की हीं नहीं है, करने के लिए है । कौन हिंदू है , कौन मुसलमान है , कौन सिख है कौन ईसाई है । सब एक हीं पिता की सन्तान है । सभी तो हमारे ही रूप हैं, सभी तो हममें हैं, सब में हीं तो हम हैं । भक्ति में भी यही दिखाते हैं । ज्ञान में भी यही दिखाते हैं । किन्तु हमारे व्यवहार में यह बात उतरती नहीं है । प्रभु का रूप हीं एकता का है और यदि हमारे व्यवहार में एकता नहीं है तो एकता का साधन, प्रभु का ध्यान कैसे कर पाएंगे ?

गुरु महाराज का एक प्रवचन है कि साधना कैसे करनी चाहिए ? (संत बचन, भाग एक, प्रवचन नंबर चार) प्रात: काल उठ कर और रात को सोने तक क्या करना चाहिए । वह

प्रवचन भाइयों को बार बार पढना चाहिए । तो अपने जीवन को गुरु रूपमय नहीं तो ईश्वरमय बनाने का प्रयास अवश्य करना चाहिए । गुरु चुकी मनुष्य रूप में होता है, उसके गुण भी देखते हैं, और हमें अपने हीन बुद्धि से उनमें अवगुण भी दीखते हैं । हमारे में तो पूर्ण श्रद्धा नहीं है कि अवगुण देखकर भी कहें कि नहीं सब गुण हिन् है । तो यदि हम अवगुण देखते हैं तो हमारे रास्ते में बाधा पड जाती हैं । **इसलिए ईश्वर के हीं गुणों को देखना चाहिए, अपनाना चाहिए, हृदय में अंकित करना चाहिए और व्यवहार में उन को विकसित होने देना चाहिए । ईश्वरीय गुणों को अपनाना ही साधना है यही असली ध्यान है ।** गुरू की तस्वीर या ईश्वर का रूप तो केवल मन को एकाग्र करने के लिए है । यह तो क - ख पढना है । आगे चलिए ये काठ के फ्रेम में जो तस्वीर आपनें जड़वा रखी है उसको हृदय में मत बसाइए, आगे और बढिए । अब मनन करिये , मनन में हीं प्रभु के विचार आएंगे । गुणों का विचार आएगा । हमारे यहाँ भाई लोग मनन नहीं करते हैं । मनन करते करते ही अपने आप को खो देना है । इसको अंग्रेजी में मेडिटेशन या ध्यान कहते हैं । मेडिटेशन या ध्यान में अंतर है । समाधि और मेडिटेशन एक बात है । यह समाधि अवस्था में कर्ता कर्म या क्रिया तीनों मिलकर त्रिकुटी बनी है, वह एक हो जाती है यानी प्रभू रूप हो जाती है । मेडिटेशन अंग्रेजों का शब्द है इसमें मेडिटेटर (जो साधन करने वाला होता है उसका) अस्तित्व खत्म हो कर प्रभु का अस्तित्व रह जाता है । तो एकाग्रता की तरफ उतनी चिंता मत करिये । चिंता करें प्रभु के गुणों को अपनाने की । परमात्मा समता स्वरूप है उसका एक गुण ले लीजिये । देखिये समता हमारे हृदय में आई या नहीं हमारे व्यवहार में विकसित होती है या नहीं । यदि हम छोटी छोटी बातों से उत्तेजित हो जाते हैं तो हमने क्या ध्यान किया ?

परन्तु आगे बढ़िए । गुरु के जो गुण हैं, उन पर मनन करें और उनको हृदय में बसाने की कोशिश करें । और आगे बढें । गुरु की आत्मा का ध्यान करे । उस आत्म रूप जैसे ही आप हो जाएँ । एक चरण से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में पहुंचे । यही आत्मा परमात्मा में लय हो जाती है । इसलिए गुरु की आत्मा में लय होने से परमात्मा में आप लय हो जाते हैं या आप परमात्मा रूप हो जाते हैं ।

अपनी परीक्षा ले । कि जो गुरु के गुण हैं , प्रभु के जो गुण हैं वो मेरे में कितने आये । यह स्वयं निरीक्षण करना चाहिए , इसका मनन करना चाहिए । इसकी कमी है । जो लोग अपने अंदर अवगुन देखते हैं वो भाग्यशाली हैं । गुरु महाराज कहा करते थे यही

ज्ञान की शुरुआत है । अपने अवगुण नजर आने लगे तो आप ज्ञान की तरफ बढ़ने लगे । आप तप करें । अपने अवगुणों से मुक्त होने का जो प्रयास है , यह तप है । हठ योग का तप नहीं है, अग्नि के सामने बैठ जाए और यह भी हम जो साधना करते है तीन तीन घंटे बैठते है यह भी एक हठ योग की क्रिया में आ जाता है । सूक्ष्म साधना है, हृदय सूक्ष्म हुआ है कितनी करुना हममें आई है यह तो विचार करो । हमारे सत्संग में ऐसे लोग हैं, परंतु सब को कोशिश करनी चाहिए । जो दूसरों के दुख में दुखी नहीं होता उसकी साधना भले हो वो बाहर हों मौन साधना करवा रहे उसका क्या लाभ है, इस पर अधिक ध्यान दे । प्रभु करुणानिधि है तो क्या हमारे भीतर भी करूणा उत्पन्न होती है ? गरीबों को देखकर हमारा मन दुखित होता है या नहीं ?

लाला जी महाराज (परम संत महात्मा रामचंद्र जी महाराज) की पुस्तक संतमत प्रवेशिका को पढें । उसमें प्रश्न किया है कि अधिकारी कौन है ? दिवाली के दिन आप मिठाई लेने जाते है, रास्ते में कोई गरीब मिलता है, वह कपड़े नहीं पहने हुए है , वह सर्दी में ठिठुर रहा है । आप क्या करेंगे ? इसका उत्तर मांगा है । किसी ने उत्तर नहीं दिया । तो क्या हम अधिकारी नहीं है । ईश्वर के गुण हमें उतरने चाहिए । अपनी मलिनता को धोने के लिए चिंता करिये । इसलिए सत्संग का महत्व है । सत्संग में प्रभु की उपमा गायी जाती है, गुणगान किया जाता है, वहां से कोई न कोई बात हृदय में अंकित हो जाती है । गुरु के मुख से जो बात निकलती है यदि उसके प्रति आपकी श्रद्धा है तो उसकी बात आप के हृदय में अंकित होती चली जाएंगी । ये सत्संग का लाभ है ।

साधना को विशाल बनाइए । गुणों को अपनाइए । मुख्य गुण साधक का जो है वह गुरु का या ईश्वर का 'प्रेम' । प्रेम में सब गुरु आ जाते हैं । प्रेम से साधना करें । प्रेम पर मन को एकाग्र करें । जड़ता का, एकाग्रता का कोई महत्व नहीं है । इसलिए जो कई लोग ऐसे हैं जिनका व्यवहार बड़ा ही सुन्दर है, उन्हें कभी गुस्सा नहीं आता है । हमारे मित्र की मृत्यु हुई हमें एक दो बार अध्यात्म विषय बात करने का मौका मिला । वो साधन नहीं करते थे कुछ परंतु उनका जीवन इतना शुद्ध था कि कभी उनको गुस्सा नहीं आता था । प्रभु का नाम नहीं लेते थे । निरंतर आनंद या प्रसन्नता में जैसे एक फूल खिला रहता है, वैसे ही प्रसन्न रहते थे । उनकी मृत्यु पर हजारों की संख्या में लोग एकत्रित हुए और सब ने ही उनकी तारीफ की । किसी ने बुरा नहीं कहा । तो वह प्रशंसा किस बात की थी, उनके जीवन में व्यवहार की ।

हम मन की एकाग्रता के पीछे पड़ रहे है ,वह एक दैवी गुण है । ईश्वरीय गुण है । वही प्रभु को भाते है, वही संसार को भाते है और उन्हीं से आपका ध्यान अधिक प्रगतिशील होता है । यदि भीतर में गुण नहीं है तो ध्यान नहीं बनेगा । एकाग्रता बन जाएगी, ध्यान नहीं बनेगा । ध्यान का मतलब है परमात्मा का विचार करते करते परमात्मा रूप हो जाये । परमात्मा का रूप सत्-चित-आनंद और उसमें जितने गुण है, वह सब आप में अंकित हो जाए, यह ध्यान है । आप तस्वीर पर मन को एकाग्र कर रहे हैं वह तो स्कूल में पहली कक्षा का पाठ है, आगे बढिए । बहुत लोग चिट्ठियां डालते हैं मिलते हैं, ये कहते हैं कि मेरा मन नहीं एकाग्र होता । इसकी चिंता मत करिए । मन एकाग्र करने के लिए कई दफा आपको साधारण टेक्नीक (तकनीक) बता चुका हूँ । उससे मन थोड़ी देर के लिए स्थिर हो जाता है मगर जड़ता आ जाती है । हमें सूक्ष्मता की तरफ चलना है। सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म की ओर । परमात्मा जिस तरह सूक्ष्म है उस तरफ जाना है । उन गुणों की तरफ ध्यान दीजिये । उसकी चिंता करे कि मेरे को अवगुण नहीं खत्म होते हैं । मेरे में से क्रोध क्यों नहीं खत्म होता, मेरे भीतर से अहंकार क्यों नहीं खत्म होता । मेरे हृदय में दूसरों के लिए प्रेम क्यों नहीं जागत होता । क्यों मैं लोगों में दोष देखता हूँ । गुरु रूप बनिये, प्रेम रूप बनिये । उस से धीरे धीरे सब अवगुण धुल जाते हैं और ईश्वर के गुण आ जाते हैं ।

गुरुदेव ने शरीर छोड़ने से दो साल पहले कहा था और बड़े दुःख से कहा था कि मुझे खेद है कि एक एक भी व्यक्ति जैसा मैं बनाना चाहता था, सारे सत्संग में नहीं बन सका । यह कितना दुख दिया हमनें अपने प्रियतम को, यही हमारा भाव है, और हम और भय है अपने गुरु के प्रति कि उन को ऐसे शब्द कहने पड़े । हमारा जीवन हीं कुछ ऐसा था कि उनके जीवन काल में उनकी बातों पर हमनें मनन किया हीं नहीं ।न मनन किया और न हीं उनकी बातों के सार को अपनाया । यह महापाप है जो हमनें किया । उनको अवसर दिया कि उनको कहना पड़ा कि हमें खेद है कि एक व्यक्ति भी उनकी आशा के अनुसार नहीं बन सका । उसी आधार पर मैं बार बार यह कहता हूँ । लोग बाग मेरी बात को नहीं मानते, वह सहमत नहीं हैं । परन्तु यह एक सत्यता है । सब संतों ने कहा है 'बिन गुरु भक्ति ज्ञान नहीं होई' । भक्ति के बिना कबीर साहब कहते है ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना प्रभू की समीपता नहीं आती । ज्ञान का मतलब है 'अनुभूति' । 'ज्ञान' बौद्धिक विज्ञान नहीं है । गुण जो है वो नींव है । मन को भी एकाग्र करिये परंतु इस तरफ भी ध्यान दीजिये कि अपने जीवन को धर्ममय बनाना है ।

साधना जब शुरू करें तो पहले पांच सात मिनट प्रभु का गुणगान करिए । गीता का पाठ करिये, मीरा के भजन पढिये, सूरदास जी के भजन पढिये नामदेव जी की बानी पढ़िए । जिसमें श्रद्धा और विश्वास हो वही करिये । सभी ठीक है, सब एक तरफ ले जाते हैं । और जब साधना खत्म करें तब भी गुणगान करना चाहिए ।

एक बात और मैं कहना चाहता हूँ कि जिस तरीके से भी सत्संग में बैठते है परमात्मा का गुणगान करके, गुरु का गुणगान करके उसी प्रकार पांच सात मिनट के लिए बैठ कर गुरु का मानसिक संग करना चाहिए कि गुरदेव बैठे हैं , ईश्वर बैठे हैं और उनकी कृपा हम पर बरस रही है । मन ही मन जो उन्होंने नाम दिया है उसे लेते रहे । यह चित् को स्थिर करने का साधन है । अंतर में प्रसाद लेना है । इसके बाद में जो अभ्यास आपको बतलाया गया वह करें । काम करते हुए भी दोनों साधन यानि प्रसाद लेने का और व्यक्तिगत अभ्यास करते रहना चाहिए । यदि कोई साधना न भी करें, यही करते रहे, इससे भी काफी लाभ होगा । जब भी मन अपवित्र हो , क्रोध आया हुआ हो और किसी प्रकार की कठिनाई हो तो ये साधन कर लेना चाहिए । मन में शांति आ जाएगी ।

गुरदेव सबका भला करें ।

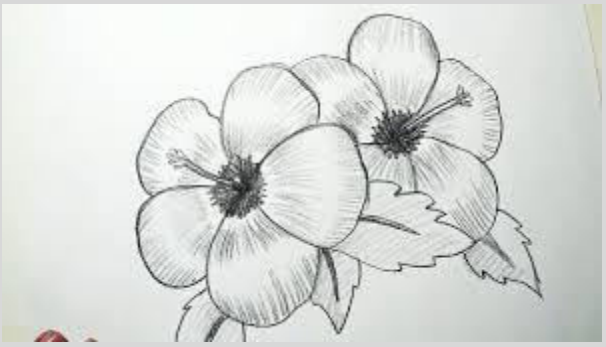

(३२)

सच्चे जिज्ञासु बने

गोपालगंज, दिनांक१५-३-७३, सायं

महाराष्ट्र में संत तुकाराम जी बहुत मशहूर संत हुए है । उनका कीर्तन हो रहा था । वहाँ छत्रपति शिवाजी पहुंचे । कीर्तन के कुछ भजन वैराग्य के थे । शिवाजी को कीर्तन ने बहुत प्रभावित किया । छत्रपति ने तुकाराम जी से कहा कि "आप मुझे अपनी शरण में ले ले" , मैं भी घर बार छोड़ कर सन्यासी बनना चाहता हूँ परन्तु तुकाराम जी ने अपनी शरण में नहीं लिया । उनके भाव को सराहा कि आप समर्थ गुरु रामदास जी की सेवा में जाए । उनका जो आपके प्रति आदेश हों उनका पालन करें ।

गुरु और ईश्वर में कोई अंतर नहीं है–यह सत्य है । परन्तु कैसा गुरु ? सब व्यक्ति की जो अपने को गुरु कहते हैं, वो वास्तव में गुरु नहीं है । गुरु कहलाने का उसी को अधिकार है जिसमें परमात्मा के सारे गुणहै । तभी तो परमात्मा में और उसमें कोई अंतर नहीं है । भले ही हम वेदांत का आद्यम ले कर के कह दे कि मुझमें और परमात्मा में आत्मा के कारण कोई अंतर नहीं है परन्तु ऐसे व्यक्ति के भीतर वो गुण नहीं है जो परमात्मा में है । ऐसे गुरु का मिलना सौभाग्य की बात है परंतु गुरु भी योग्य शिष्य को अपनाता है । कितने ही लोग आते हैं सेवा में, परंतु सब सेवक नहीं कहलाते । जिज्ञासु सब है इच्छा है ईश्वर प्राप्ति की परंतु सेवक बनना बडा कठिन है । सब कुछ गुरु के चरणों में निछावर करना पड़ता है । शरीर, मन, धन, अपना अहंकार, अपना मोह , कुछ नहीं रखना है , सब कुछ गुरु के चरणों में अर्पण करना है । बडा कठिन है ।

शिवाजी जब समर्थ गुरु रामदास की सेवा में पहुंचे तो उन्होंने छत्रपती शिवाजी की परीक्षा ली है । छत्रपति संस्कारी जीव थे उनके साथ समर्थ बड़ा प्रेम करते थे परन्तु बिना परीक्षा लिए उन को पूर्णत: अपनाया नहीं है । एक बार आपने कहा कि मेरे पेट में बड़ी कठोर पीड़ा हो रही है "शिवाजी, बड़ी पीड़ा है, मैं तो मर रहा हूँ" । शिवाजी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना

की है–"प्रभु ! मुझे बताइए कि कौन सी औषधि लाऊं जिससे आपको राहत मिले आपको सुख मिले" तो समर्थ कहने लगे कि उस शेरनी का दूध लाओ, जिसने अभी बच्चे दिए हों । उस दूध में मेरी यह जलन, पीड़ा दूर हो सकती हैं । छत्रपति एक सोने का बर्तन लेकर निकले हैं क्योंकि अन्य धातुओं के बर्तन में शेरनी का दूध खराब हो जाता है । शेरनी का दूध लेना कोई साधारण बात नहीं है । शेर या शेरनी का देखकर तो वैसे ही व्यक्ति के प्राण निकल जाते हैं और जिस स्थिति में गुरु ने कहा कि शेरनी हो, उसमें तो शेरनी किसी को अपने पास आने ही नहीं देती क्योंकि वह सोचती है कोई उसके बच्चों को हानि पहुंचाने तो नहीं आया है । जब वे जंगल में निकले है तो देखा है कि एक गुफा में शेरनी ने बच्चे दिए है और उसकी आंखों में जलन है, तेजी है । शिवाजी को गुरु में निष्ठा थी । खड़े हो गए है । कहा है–"माँ" !" यह भाव है । यदि शुद्ध भाव है तो शेर जैसा भयानक पशु भी सरल हो जाता है । हमारे मन में भय रहता है कि अमुक व्यक्ति मुझे दुःख दे देगा । तो ऐसा हो ही जाता है और वह दुःख दे ही देता है । हम डरते हैं शेर से या अन्य पशुओं से जिसका परिणाम यह होता है कि वे हम पर आक्रमण करते हैं । जिसके भीतर में सरलता है द्वैत नहीं है, प्रेम है, विश्व प्रेम हैं, सबमें परमात्मा के दर्शन करता है, सब में गुरु के दर्शन करता है, उनको ऐसे भयानक पशु भी कुछ हानि नहीं पहुंचा सकते, यह निर्भयता जिज्ञासु में आनी चाहिए ।

तो वे खड़े हो गए हैं और कहते हैं–"माँ ! मेरे गुरुदेव के पेट में बड़ी पीड़ा हो रही है मुझे थोड़ा दूध दे दें । आपने आगे बढ़कर दूध लिया है । शेरनी की अवस्था ऐसी थी, जैसे कोई पराजित व्यक्ति हो या जिसमें अपनत्व हो । प्रेम की जो दशा होती है, माँ के बच्चे के प्रति, जो मातृ भावना होती है वह शेरनी की उस समय थी । आपने दूध लेकर धन्यवाद किया है मुड़ कर प्रेम से देखा है और विदाई ली है । दूध का पात्र लेकर गुरू के पास आए हैं । गुरुदेव बड़े प्रसन्न हुए हैं, आशीर्वाद दिया है–"शिवा तू शेरों का शेर बनेगा ।" यह तो एक परीक्षा थी । उनको दूध की क्या आवश्यकता थी ।

दूसरी बार फिर फिर परीक्षा ली है । एक भिखारी बनकर आए हैं । छत्रपति अपने महल से निकल कर आए हैं । देखा है कि गुरुदेव द्वार पर खड़े हैं, भिक्षा मांग रहे हैं । गुरुदेव से कहते हैं कि आप ! और भिक्षा मांगते हैं ? कहते हैं–हाँ, आज तुझसे भिक्षा लेनी है । तू इस भिक्षा पात्र में क्या डालेगा ? डाल इसमें क्या डालता है । भीतर जाकर शिवाजी ने एक कागज के टुकडे पर लिखा है–'मेरा शरीर, मेरा मन, मेरा राज्य, और जो कुछ भी मेरा है सब

आपके चरणों में अर्पण हैं' । तलवार एक तरफ रख दी है राजमुकुट उतार कर एक तरफ रख दिया है और करबद्ध हो समर्थ के सामने नतमस्तक हो गए हैं और निवेदन किया है कि यह सब आपका है । ये है जो कबीर साहब कहते हैं कि "मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तुज्झ" तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मुजझ" कितना मोह विमुक्त स्थिति है । क्या हम ऐसा कर सकते हैं ? गुरुदेव बड़े प्रसन्न हुए हैं और शक्तिपात किया है, माँ से प्रार्थना की है, और शिवाजी को शक्ति स्वरूप बना दिया है । ये कोई साधारण बात नहीं थी, उस समय औरंगजेब का कोई मुकाबला कर सके ।

तो ऐसे गुरु होने चाहिए और शिष्य भी शिवाजी की तरह हो । **बार बार गुरु का स्मरण करना या बार बार उनका ध्यान करना इतना ही काफी है और कुछ करने की जरूरत नहीं है । परन्तु गुरु सच्चा हो और उसकी सेवा के लिए संतों की वाणी में बार बार आदेश दिया है ।** उसके चरण क्या है ? सच्चा गुरु अपने चरणों की सेवा कराने के लिए, पूजा कराने के लिए कभी तैयार नहीं होता, तो फिर क्यों कहा गया कि गुरु चरणों की पूजा करो । जो व्यक्ति गुरु की शारीरिक चरणों का ध्यान करता है उसके भीतर में दीनता आती है । हम लोग शरीर का ध्यान करते हैं जो चरणों का ध्यान करता है वो अति दीन होगा । चरणों की सेवा का दूसरा मतलब यह है कि जो उसका उपदेश है, आदेश है उसका पालन करना, चूं चरा नहीं करना । हमें अभिमान आता है जाता है, बड़े बड़े साधक हैं उन्हें भी अभिमान आ जाता है ।

एक बार गुरु गोविन्द सिंह जी के पास एक युवक आया दो तीन साल रहा, घर से पत्र आया कि काफी दिन हो गए तुम्हें गए हुए, तुम आ जाओ तुम्हारी शादी निश्चय की है । यह गुरु महाराज को भी पत्र लिखा । उन्होंने कहा कि जाओ बच्चे तुम्हें जाना चाहिए काफी दिन हो गए हैं घर से निकले, परंतु एक बात का ध्यान रखना कि हम जिस समय पत्र भेजे उसी समय उलटे पांव आ जाना । उसने कहा–"ठीक है, गुरुदेव जैसी आपकी आज्ञा" । घर पहुंचा तो देखता है कि विवाह का सब प्रबंध हो चुका है । फेरों पर बैठे । दो फेरे हुए थे तो पत्र आ गया गुरु जी का कि तुरंत आ जाए । देखिये कितनी नाजुक स्थिति है । उसी वक्त फेरों का मंडप छोड़कर वापिस गुरुदेव की तरफ चल पड़ा है । परंतु अहंकार ने छोड़ा नहीं । मन में विचार उठा कि मैं कितना बड़ा साधक हूँ कितना अच्छा साधक हूँ कि विवाह के फेरे हो रहे थे और फेरों को छोड़ कर तुरंत गुरु के आज्ञा का पालन करने के लिए उठ खड़ा हुआ । ये माया कैसे फंसाती है । परन्तु गुरु पूर्ण था, जहां परीक्षा ली वहां बचाया भी है । रास्ते में उस युवक ने

एक वैश्या के घर देखा । उसकी सीढियों पर जाने लगा । गुरु रक्षा करता है । तो क्या देखते हैं सीढ़ियों पर गुरु महाराज खड़े हैं । कहा–"तुम यहाँ ?" वह युवक पाँव पड गया । उसके भीतर में जो अहंकार आया था जिसके कारण बुरी तरफ मन गया, वह क्षीण हो गया । पाप कर लिए, रोने लगा । गुरु ने आलिंगन किया ।

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध बडा नाजुक है । परन्तु यदि कोई सच्चा गुरु मिल जाये तो उसमें और परमात्मा में कोई अंतर नहीं है । उसकी प्रसादी , उसकी प्रसन्नता तथा उसका एक शब्द कि 'तुम मुक्त हो गए' इतना ही काफी है साधक को कुछ करने की जरूरत नहीं है गुरु की वाणी में इतनी शक्ति होती है । तभी तो गुरु शब्द की बड़ी महत्ता कही गई है । उसको वाणी में सारे विश्व की शक्ति हैं परन्तु गुरु तो कोई हो ।

स्वामी विवेकानंद जी अमेरिका गये है । शुरू में इनको अपने गुरु(स्वामी राम कृष्ण परम हंस) पर पूरा विश्वास नहीं था । वहां All World Religions Conference (सर्व धर्म सम्मेलन) था । उसमें आपको प्रवचन देना था । बड़ी ऊंची संस्था थी । जिसमें बड़े उच्च कोटि के विद्वान पहुंचे हुए थे । उस समय विवेकानंद की छोटी आयु थी, सोचने लगे कि मैं साधारण सा युवक हूँ । इतने बड़े बड़े योगियों और संतों के आगे मेरी क्या गिनती है । यहसोच कर घबरा गए है । रात को सोये हैं तो परम हंस स्वामी राम कृष्ण प्रकट हुए और कहा कि नरेन ! तुम क्यों चिंतित हो रहे हो ? प्रातःकाल सम्मेलन में जो कुछ तुम्हें बोलना है वह मैं तुम्हें अभी कंठस्थ कराए देता हूँ । यह कह कर सारा प्रवचन बोल दिया है । विवेकानंद में एक संस्कार था, एक शक्ति थी कि वह श्रुतिधर थे । एक पुस्तक पढ़ लेते थे तो तुरंत ही याद आ जाती थी । उनसे पूछो कि अमुक बात कहाँ लिखी है तो वह पृष्ठ और पंक्ति तक बता देते थे । स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी । प्रात: उठे, तो देखा कि जो रात को उनको गुरुदेव ने उन्हें बताया था वह सारा उनके मस्तिष्क में भरा पड़ा है । उन्होंने उस महामंडली में आकर प्रवचन दिया है और इन्हीं का प्रवचन सर्वश्रेष्ठ माना गया है । ये है गुरु कृपा । यह कृपा कौन कर सकता है । ये सब व्यक्ति नहीं कर सकते । यह महान गुरुजन ही कर सकते हैं । मेरे गुरुदेव (परम संत महात्मा श्री कृष्ण लालजी) फरमाया करते थे, ऐसा गुरु हजार या बारह सौ साल बाद कोई एक आया करता है । बाकी सब सेवक है, मॉनिटर है । रास्ता चल रहे हैं । अपना उद्धार करने का प्रयास कर रहे हैं और दूसरों की भी सेवा कर रहे हैं । गुरु महाराज के स्पष्ट शब्द है कि जितनी अधिक सेवा करोगे उतना अधिक लाभ होगा ।

लोगों को ऐसे ऊँचे विचार सुनकर घबराना नहीं चाहिए । जहाँ ऐसी वाणी सुनी, ऊंची ऊंची बातें सुनी ,तुरंत ही समर्पण नहीं कर देना चाहिए । जैसे गुरु को अधिकार है सेवक की परीक्षा लेने का, उसी तरह जिज्ञासु को भी अधिकार है गुरु की परीक्षा लेने का । गुरुदेव कहा करते थे-- कोई सौदा लेने के लिए बाजार में जाते हैं तो पांच सात दुकानों पर जाते हैं जहाँ सौदा सस्ता मिलता है और अच्छा मिलता है वहां से लेते हैं, अन्य दिखाने से नहीं लेते । इसी तरह के उदाहरण देकर कहा करते थे कि गुरु करने से पहले उसकी परीक्षा ले लो गुरु की जो व्याख्या शास्त्रों ने की है परीक्षा करके देख लो कि वह व्यक्ति शास्त्रों के अनुसार वैसा उतरता है कि नहीं उतरता । उसकी रहनी करनी कथनी इनकी परीक्षा करिये उनका आचरण कैसा है क्या वह पैसे का भूखा तो नहीं है , सम्मान का तो भूखा नहीं है क्या उसके पास बैठने से हमारा मलीन मन पवित्रता की ओर बढ़ता है कि नहीं । मन एकाग्र होता है कि नहीं । उसके पास बैठकर सुख और शांति की अनुभूति होती है या नहीं । गुरु महाराज कहा करते थे कि चाहे दो जन्म या तीन जन्म लग जाए गुरु धारण करने में, जल्दी नहीं करनी चाहिए । राधास्वामी मत के परम संत श्रावण सिंह जी महाराज का भी यह कथन था । तो योग्य गुरु की उपलब्धि में यदि तीन चार जन्म भी लग जाए तो समझना चाहिए कि भाग्य अच्छा है । उनका कहना था कि चार पांच जन्म गुरु की सेवा में लग जाते हैं उसकी प्रसन्नता और उसकी प्रसादी प्राप्त करने में लग जाते हैं तब कहीं जाके जिस आशय के लिए गुरु करते हैं वह आशय पूरा होता है ।

परन्तु समय बदल गया है । लोग बाग आकर कहते हैं कि साहब दीक्षा दे दीजिये । हम भी मजबूर हो जाते हैं कि अच्छा भाई ले लो । परन्तु वास्तव में यह दीक्षा नहीं है, न तो मैं उतना उतरता हूँ और नहीं लेने वाले उतरते हैं । गुरु बहुत मिल जाएंगे परंतु सच्चे शिष्य बहुत कम मिलेंगे । गुरु महाराज कहा करते थे कि गुरू से संबंध आग से खेलने वाला है । तब भी यदि सौभाग्य से, ईश्वर कृपा से कोई योग्य गुरू मिल जाता है तो कुछ और करने की जरूरत नहीं है, उसी का ध्यान, उसी के चरणों में ध्यान, उसी की सेवा (यानी उसके उपदेशों का पालन करना, यह उसकी सेवा है)-- इतना ही करना है और कुछ नहीं करना है । घंटों बैठ कर समाधि लगाने की कोई आवश्यकता नहीं । घर बार छोडने की कोई जरूरत नहीं, वो तो पारस है । पारस से भी ज्यादा शक्तिशाली है, पारस तो केवल लोहे को सोना बना सकता है । परंतु सच्चा भक्त सच्चा गुरु अपने जैसा बना लेता है । उसमें गुण ऐसे हैं कि अधिकारी शिष्य जब उनकी सेवा में आता है तो बिना प्रयास ही वह उससे आत्मिक प्रसादी ले लेता है ।

परन्तु जो जिज्ञासु हो वह सच्चा जिगासु हो उस के हृदय की खिड़की खुली हो । ऐसा नहीं कि वह तर्क बुद्धि वाला हो , यह तो बात गुरु की अच्छी नहीं लगी, यह बात ऐसी हैं वैसी हैं-- मारे गए । भगवान कृष्ण ने अर्जुन को योग्य छात्र बनाने के लिए काफी समय लिया है । हालांकि वह शास्त्रज्ञ था , पढ़ा लिखा था, विद्वान था, और प्रभु की संगति थी तब भी देखिये कि भगवान को कितना समय लगा उसको अधिकारी बनाने के लिए । भगवान की प्रसन्नता है संबंध भी ऐसा है कि अर्जुन के साथ भगवान की बहन ब्याही हुई है । सब कुछ है परन्तु तब भी भगवान को कितना समय लगा है, अर्जुन को उसी स्थिति में लाने के लिए कि वह पूर्ण समर्पण कर सके । समर्पण करना कोई बच्चों का खेल नहीं है । जो व्यक्ति अपने आपको पूरी तरह समर्पण कर देता है अपने गुरु के प्रति चाहे अपने ईष्टदेव के प्रति तो उसमें ईश्वर कृपा तो तुरंत ही प्रवेश हो जाती है । एक क्षण लगता है । परंतु होता नहीं है । सच्चा सेवक सच्चा गुरु बहुत कम मिलते हैं । परन्तु जो सिद्धांत है वो तो है ही, जो सत्यता है वो तो है ही । तो सिर की बाजी लगानी है इस रास्ते में कुछ मांगना नहीं है । बच्चा क्या माँ से कुछ मांगता है ? यह प्रभु का गुरु का विरद है कि अपने सच्चे सेवक की देखभाल करें, सब तरह से उसकी रक्षा करें । सेवक तो कुछ अर्पण करके निर्भय हो जाता है । कोई चिंता ही नहीं रहती । हम मांग मांगते हैं कि हमारा यह काम हो जाये । ठीक है, मांगना चाहिए, बाप है गुरु, मांगना बुरी बात नहीं है परंतु कभी कभी । मांगने की चीज गुरु महाराज कहा करते थे ईश्वर का प्रेम मांगो । हमने नहीं माँगा, आप नहीं मांगते तो क्या आपका दोष नहीं है ? हमने भी समय व्यर्थ गंवाया हैं, हम भी पूर्ण शिष्य न बन सके । कुछ लोग पुराने बैठे हैं, गुरु महाराज ने कहा है शरीर छोड़ने से करीब दो साल पहले कि जैसा मैं बनाना चाहता था एक भी व्यक्ति वैसा नहीं बन सका । ये उनके अंतिम समय का खेद था । हमारा दोष है, हमारी कमी है । उस भंडार में कोई कमी नहीं थी । कमी हमारे अंदर है । हम माया में, वासनाओं में फंसे हैं सम्मान के भूखें थे जो भी सांसारिक बातें होती है उनमे फंसे थे । जैसा कि कबीर साहब कहते हैं कि गुरु और गोविन्द दोनों खड़े हैं, मैं किसके पाँव लागूं । स्वयं उत्तर देते हैं कि गुरु के-- क्यों ? गुरु ने ही ईश्वर से मिला दिया । सब शास्त्र सब महापुरुष गुरु को ही अधिक महत्व देते हैं, इसलिए यह कहना कि गुरु और परमेश्वर एक ही है, कोई गलत नहीं है । परन्तु होना चाहिए वास्तव में गुरु । गुरु पूर्ण समर्थ है, परन्तु वह सामान्य जीवन जी कर व्यक्तियों को अपने जीवन से उदाहरण देते हैं, उन्हें शिक्षा देता है कि संसार में रहकर कैसे जिया जाए ।

गुरु गोविन्द सिंह जी का उदाहरण लीजिये । बालक है नौ वर्ष के । उनके पिता की सेवा में कश्मीरी पंडित आएं हैं कि औरंगजेब से ब्राह्मणों ने कहा कि यदि गुरुदेव इस्लाम स्वीकार कर लें यानी मुसलमान हो जाए तो हम भी धर्म परिवर्तन कर लेंगे, औरंगजेब ने कहा कि ठीक है । उसने गुरुदेव को बुलाया है और धर्म परिवर्तन के लिए कहा है तो वे नहीं माने । उनको फांसी पर चढ़ाने के आदेश हो गए हैं । गोविंद बालक है । जब पंडित आएं तो उसे पता था कि यह बात होगी गुरुदेव जब बालक की ओर देखते हैं । तो बालक गोविंद कहता है कि पिताजी चिंता मत करिये । यह समय है देश को बचाने का, यह समय हिन्दू जाति को बचाने का है । जाइए, मेरी चिंता न करें । एक ही बच्चा है, फिर भी अपना बलिदान दिया है । पिता का बलिदान दिया है, अपनी धर्म पत्नी का बलिदान दिया है, अपनी माता का बलिदान दिया है, चार बच्चे थे उनका बलिदान दिया है । चारों बच्चों की मां कहती है कि मैं क्या करूँगी । उनको पहले हीं अंतर से कुछ आभास् हुआ था कि चार बच्चे रहेंगे नहीं । उन्होंने गुरु महाराज से कहा है, की ऐसा मुझे आभास हो रहा है । उत्तर दिया है कि हां, ऐसा होना है । माता नहीं जी सकी । उसके बाद चारों को शहीद कराया है, स्वयं शहीद हुए है । ऐसा गुरु जिसकी बड़ी युवा अवस्था है, खड़ा होकर कहता है कि मुझे तो पांच व्यक्ति चाहिए जिसके मैं सिर काटूंगा । उस वक्त भारत सो रहा था हमारी बहनों को, लड़कियों को, शासक उठाकर ले जाते थे । कोई जुबान से बोलता नहीं था । वो कहते थे क्या करें ? ऐसे ही ईश्वर की मौज है । इतने उस वक्त गिर चुके थे हमलोग । देश को उठाने के लिए बलिदान की आवश्यकता थी । तो कहा कि पांच व्यक्ति चाहिए । ऐसी घोषणा की तो लोग बाग माताजी के पास जाकर कहते हैं कि गुरु की अभी छोटी उमर है, ये बात ठीक नहीं कह रहे, इस तरह से सत्संग खत्म हो जाएगा । माँ भी मोह में फंसी है । माता आकर बच्चे से कहती है कि बेटे ! यह क्या कर रहे हो तुम ? ऐसा खिलवाड़ कर के क्या करोगे ? वो कहते हैं कि माता जी, आप चिंता न कीजिये, यह मेरा काम है । और बड़ी दृढ़ता से कहा कि मुझे पांच आदमी बलि के लिए चाहिए । एक एक करके पांच आदमी आए हैं, जिन्हें वह तम्बू में ले गये हैं उनकी परीक्षा ली है । यह देखकर तो सारा समुदाय बलिदान के लिए उठ खड़ा हुआ है । खैर उन पांच व्यक्तियों को अपना प्यारा बना लिया है और उनसे दीक्षा ली है उसी तरीके से जैसे उनसे स्वयं दीक्षा दी थी । जहां दृढ़ता थी वहां दीनता भी बड़ी थी । कहने का मतलब यह है कि गुरु शिष्य का संबंध है । शिष्यों को गुरु बना दिया है । गुरु से ही तो दीक्षा ली जाती है ।

अब जब गुरु गोविन्द सिंह जी को याद किया जाता है तो उन पांच प्यारों को भी याद किया जाता है । हमारे यहाँ सिक्खों में जब प्रार्थना होती है तो गुरु गोविन्द सिंह जी को जब याद किया जाता है तो उन पांच व्यक्तियों को भी याद किया जाता है । उनको अमर कर दिया । उनको गुरु बना दिया । अपना गुरु बनाया है । ये गुरु शिष्य का जो संबंध है शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता है । भगवान कृष्ण जैसे गुरु हो, अर्जुन जैसे शिष्य हों , उनके लिए यह बानी लागू होती है । जो डॉक्टर साहब (मुंद्रिका प्रसाद जी) पढ़ रहे थे:--

"गुरु, गुरु, गुरु, कर मन मोर, गुरु बिना कुछ नहीं होर"

हमारे और साधारण व्यक्ति जो गुरु कहलाते है, यह उनके लिए नहीं है । **ईश्वर का नाम लेना या गुरु का नाम लेना एक ही बात है । ईश्वर ही गुरु है और गुरु ही ईश्वर हैं, उन दोनों में कोई अंतर नहीं है । जैसा भगवान ने गीता में कहा है, ईश्वर स्वयं हीं गुरु रूप धारण करके आता है ऐसे गुरु की जब हम पूजा करते हैं तो हम ईश्वर की ही पूजा करते है ।** हम और आप रास्ते के पथिक, एक दूसरे का आश्रय लेकर चल रहे हैं और हो सकता है कि वह क्षण जब कोई सच्चा गुरु आकर हम-आप सबका उद्धार करे । पढा लिखा व्यक्ति ऐसा वाणी या ऐसे शब्दों को समझता नहीं है वह कहता है यह सब झूठ है । परन्तु यह है भी सही कि इस वेश में लोगों ने जनता का बहुत शोषण किया है । कल एक साहब कह रहे थे कि रावण संत वेश को बदनाम किया है । साधु वेश में आकर उसने सीता का अपहरण किया था । यह Institution (यहां पर 'साधु वेश') बहुत बदनाम है । कोई सच्चा व्यक्ति का सच्चा गुरु यदि आता है भी है तो हम सोचते हैं कि यह गुरु है भी ? लोगों का दोष नहीं है जो अपने आप को 'गुरु' कहते हैं, 'संत' कहते हैं, या संन्यासी कहलाते हैं, उनका दोष है । परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि आप सब को कोई ऐसा गुरु मिल जाये जिसके केवल 'तथास्तु' कहने मात्र से उद्धार हो जाये । हमें तब तक ईश्वर से प्रार्थना रहना चाहिए, भिक्षा मांगते रहना चाहिए । भिक्षा मांगते रहना चाहिए, अपने जीवन को स्वच्छ करते रहना चाहिए । एक तो साधारण गुरु है परन्तु इस वाणी में जिस गुरु के प्रति संकेत है हम आप वह गुरु नहीं हैं । थियोसॉफिकल सोसाइटी में सात प्रकार की दीक्षा होती है । अंतिम दीक्षा के समय भगवान बुद्ध स्वयं प्रकट होते हैं, शरीर रूप में । उनको स्थान का भी पता है । उनकी जो अंतिम दीक्षा होती है बहुत मुश्किल से होती है । एक या दो जन्म में नहीं होती । कोई भाग्यशाली व्यक्ति होता है जिसको अंतिम दीक्षा का प्रसाद मिलता है । ये गलत नहीं है । वो परमात्मा ही गुरु रूप में आता है । भगवान बुद्ध भी

परमात्मा का रूप हैं । अब भी आते हैं जिन लोगों ने इस दीक्षा का सौभाग्य प्राप्त किया है, उन लोगों ने अपने अनुभव वर्णन किये हैं । डॉक्टर रैनेडे, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर थे । उन्होंने दक्षिण भारत के संतों पर एक किताब लिखी है उसमें भी है वर्णन किया है कि वह सच्चा गुरु आता है और वह अपने इश्वरत्व सच्चे जिज्ञासु को दे देता है । परंतु जब तक ऐसा गुरु न आये, रास्ता चलते रहना चाहिए । धर्म का जीवन व्यतीत करना चाहिए और प्रभु के चरणों में रोना चाहिए और सांसारिक गुरु से मदद लेनी चाहिए ।

एक जिज्ञासु को प्रभु के दर्शन करने की बडी लालसा थी । जैसा कि मैं अभी कह रहा था कि लोग बाग साधु के वेश में लोगों का शोषण करते है । एक डाकू इस कमजोरी को समझ गया । बड़ा अच्छा प्रभावशाली संत बन कर आया और उस जिज्ञासु से बोला कि ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं परंतु एक शर्त है कि जितना तेरे पास धन है वह सब ईश्वर को अर्पण कर दे । यह सब कुछ देकर भी ईश्वर के दर्शन हो जाए तो यह सौदा सस्ता है । उसने कहा कि ठीक है । धन बांध लिया, डाकू ने कहा कि चल मेरे साथ । चलते चलते एक कुँए पर पहुंचे । कुछ मंत्र पढ़े उसे प्रभावित करने के लिए और कहा कि अब कुएं के अंदर जाकर देखो । जब उस जिज्ञासु ने कुएं के अंदर झुककर देखा तो डाकू ने उसकी टांगें पकड़ कर उस कुँए में फेंक दिया और धन लेकर भागा । ईश्वर बड़े दयालु हैं, जिज्ञासु को सच्ची लगन थी, सब कुछ दे ही दिया उस डाकू को क्या दिया था, परमात्मा को दिया था । भगवान ने पानी तक पहुंचने से पहले ही उसे अपने हाथों में ले लिया और उसको बाहर निकाल लिया । बाहर निकल कर उसने डाकू को आवाज दी, कि अरे भाई, दर्शन तो हो गए । तू कहाँ भागा जा रहा है ? तू तो मेरा मार्गदर्शक है तू कहाँ भागा जा रहा है ? यह कह कर ये डाकू के पीछे भाग लिया । भगवान भी कह रहे हैं कि मैं भगवान हूं मगर वह जिज्ञासु विश्वास नहीं करता कि ये भगवान हैं । ऐसी तडप ऐसी जिज्ञासा हो । भले ही गुरु पूर्ण न हो । परंतु शिष्य यदि पूर्ण होता है तो प्रभु किसी न किसी रूप में यहाँ तक कि शालिग्राम जी की जो मूर्ति होती है उसमें प्रकट हो जाते हैं, धन्ना भगत की कथा सुनी होगी ।

यह पुरानी बातें हैं जो शायद आप नहीं मानते होंगे । अब भी अयोध्या में एक संत हैं (परमहंस बाबा राममंगल दास महाराज, गोकुल भवन, वशिष्ठ कुंड) जिन्होंने शालीग्राम जी की मूर्ति में भगवान के दर्शन किए । भगवान के एक ही रूप के दर्शन उन्होंने नहीं किया

कई रूपों में दर्शन किए । खैर अभी वें निर्वाण को प्राप्त हुए, लगभग ८५ - ८६ साल की उनकी आयु होगी ।

जिज्ञासु के भीतर में कितनी तडप है उसका महत्व है । गुरु मिल जाता है ईश्वर गुरु रूप होकर आ जाता है । परन्तु वह इस प्रतीक्षा में रहता है कि हमारे भीतर में सच्ची जिज्ञासा कब उत्पन्न होती है , हमारा मोह कब टूटता है, हम अहंकार को कब त्यागते हैं । यह बहुत कठिन है । मोह और अहंकार का त्याग करना बहुत कठिन है । हम सब इंद्रियों के सुखों का त्याग कर सकते हैं परन्तु मोह और अहंकार का त्याग करना बहुत ही कठिन है ।

तो सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न करें । ईश्वर की कृपा गुरु रूप में अवश्य होती है । यह प्रभु का विरद है, प्रभु का नियम है, सत्यता है, आज तक होता रहा है, आगे भी होता रहेगा । इसलिए जिसके हृदय में सच्ची जिज्ञासा है उसे घबराना नहीं चाहिए । वो पत्थर को भी गुरु बना लेगा तो भी उसके दर्शन होंगे । वो अयोध्या के संत जिनका मै जिक्र कर रहा था वो बाल्य अवस्था में ही गुरु कृपा से, इस अवस्था को प्राप्त हुए । वे सिख नहीं है । वे गुरु नानक देव के नाम से तो परिचित थे, परन्तु उनके पुजारी नहीं थे । उनके गुरु जरूर नानक पंथी थे, वे भी सीख नहीं थे । गुरुनानक की एक वाणी है पैंतीस अक्षर ये हमारी वर्णमाला है क, ख, ग इत्यादि । उन पैंतीस अक्षरी के प्रत्येक अक्षर के आगे उपदेश है तो वो सारी की सारी वाणी उस महापुरुष के हृदय में उतरी है और उन्होंने फिर लिखवाई है उनको कंठस्थ हो गई है । हिंदी थोड़ी से पढ़े थे, परंतु पंजाबी नहीं जानते थे । परन्तु सच्ची जिज्ञासा थी, प्रभु मिलन की । अब वे संत विराजमान नहीं है । (इस पुस्तक के छपने से पूर्व वे निर्वाण को प्राप्त हुए) अध्यात्म में कोई धर्म नहीं देखा जाता कि कौन जिज्ञासु हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, या सिख है । मुसलमानों का उद्धार हुआ है हिन्दू संतों के हाथों में, हिन्दुओं का उद्धार हुआ है मुस्लिम फकीरों के हाथ में । जो सच्चे संत हैं सच्चे फकीर है वे इन बातों की तरफ नहीं देखते । आत्मा का कोई धर्म नहीं, वहाँ कोई संप्रदाय नहीं है, वहां कोई दीवारें नही हैं । सत्यता सब छोटी छोटी बातों से ऊंची है । यह बातें भगवान कृष्ण ने, भगवान राम ने, हमको सिखलाई लेकिन हम सब कुछ भूल गए । भगवान जाते हैं, ऋषि मिलते हैं और कहते हैं कि भगवान सरोवर में मलीनता है स्वच्छता नहीं है । यदि आप उसमें स्नान करने की कृपा करें तो वह साफ निर्मल हो जाएगा । भगवान उसमें स्नान करते हैं परन्तु सरोवर साफ नहीं होता तो वे कहते हैं कि शिवरी जो भीलनी है उससे जाकर कहिये, उसके स्नान करने से तालाब साफ

होगा । वे ऋषि लोग बड़े अहंकार में थे कि हम तो बड़ी ऊंची जातिके हैं और हमारी बड़ी तपस्या है । अब हम उस शूद्र स्त्री से जाकर कहें कि वो सरोवर में स्नान करे । ये बीमारी शुरू से ही हमारे भारत में रही है और महापुरुषों ने इसको दूर करने की कोशिश की पर नहीं हुई । इसी कारण से हमारे देश में विभाजन वृत्ति रही है और हम कमजोर रहे हैं । तो मजबूरी में शिवरी से कहा गया, मरता क्या नहीं करता । ऋषियों ने भगवान का आदेश शिवरी को सुनाया । उसने सरोवर में स्नान किया तो वह निर्मल हो गया । भगवान के घर में जाति भेद नहीं कि यह छोटी जाति का है या यह बड़ी जाति का है । कौन शुद्र है और कौन ब्राह्मण है ? हृदय में जिसके ईश्वर विराजमान है वही ब्राह्मण हैं । चाहे वह ब्राह्मण के घर पैदा हुआ यदि वह कर्मों से शुद्र हैतो वह शुद्र है, कर्मों की प्रधानता है, आध्यात्म के मार्ग में ।

सागर के मोती

मन की कमजोरियों से उठना महान तप है । इसलिए सत्संगी को 'वीर' बनना पड़ता है । तपस्वी बनना पड़ता है विचारशील बनना पड़ता है । यह कहना कि अमुक बुराई, हमसे नहीं छूटती कमजोरी है । कैसे नहीं छूटती, दृढ संकल्प करिये ।

* * * * * * * * * * * * * *

परमपिता परमात्मा निराकार भी है, साकार भी है । साकार को उपासना करते करते हमें निराकार हो जाना है । आप कितनी भी भक्ति कर लीजिये परन्तु कोई भक्ति सफल नहीं होगी जब तक वह निराकार में जाकर लय नहीं होगी । वह निर्गुण स्वरूप भी है, सगुण भी है । सद्गुणों को अर्थात अच्छे गुणों को धारण करके परमात्मा के चरणों में लय होना यही 'दर्शन' है ।

* * * * * * * * * * * * * *

पहले निज-कृपा यानि शिष्य के स्वयं का प्रयास होना चाहिए । दूसरे वातावरण की अनुकूलता होनी चाहिए, यानि प्रकृति माता से सहयोग करना चाहिए । तीसरे गुरु कृपा होनी चाहिए जो तब होती है जब उसके प्रेम की धारा में, प्रवाह में, अवरोध न हो शिष्य मनमानी न करे । जब यह तीनों कृपया एक साथ हो जाती है तब चौथी कृपा यानि ईश्वर कृपा आप से आप हो जाती हैं और शिष्य का कल्याण हो जाता है ।

परम संत डॉ० करतार सिंह साहब

* * * * * * * * * * * * * *